१ भूमिका

इस विचित्र कलयुग में एक आदि-ऋषि का उत्पन्न होना एक सपना-सा लगता है। हो सकता है आजकल के युवकों को विश्वास ही न आये, परन्तु यह एक अकाट्य सत्य है कि पूज्य गुरुदेव ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी इस पृथ्वी-लोक पर सन् 1942 से 1992 तक स्थूल शरीर धारण करके हमारे मध्य में रहे। मेरा और मेरे पुराने साथियां श्री हरीराम गुप्ता, डा. रामकुमार गोयल, पं. जयनारायण कौशिक, श्री रविप्रकाश गुप्ता, डा. भीम सिंह, श्री सुशील त्यागी, कु. नीरू अब्रोल, स्वर्गीय लाला महावीर जी व पं. बृजमोहन शर्मा जी का ब्रह्मचारी जी से बहुत निकट का सम्पर्क रहा। यह हम सबका सौभाग्य था।

ब्रह्मचारी जी अथाह ज्ञान के भण्डार, पुनर्जन्म के साक्षात् चमत्कार, जन्म-जन्मान्तरां के महान ऋषि एवं विश्व का महानतम आश्चर्य लिए हुए थे। इनके लाखों वर्ष पूर्व के शिष्य, महर्षि महानन्द जी (सूक्ष्म शरीरधारी) के प्रवचन, इनके शरीर द्वारा होना तो और भी आश्चर्यजनक था। योगमुद्रा में उनके दिये गए प्रवचन सभी विषयों पर अद्भुत एवं ज्ञानवर्द्धक हैं। सभी प्रवचन वेदां व उपनिषदों पर आधारित हैं।

उनके प्रवचनों के आधार पर ही इस पुस्तक में आत्मा, परमात्मा, प्रकृति, विभिन्न अलंकारां एवं उपाधियों तथा कुछ ऐतिहासिक वार्त्ताओं का उल्लेख किया गया है। मानव-समाज में व्याप्त पाखण्ड, अन्धविश्वास और अज्ञान को दूर करना ही इस पुस्तक का उद्देश्य है।

मैं अपने उपरोक्त साथियों के अतिरिक्त श्री बिशम्बर दयाल जी,

श्री दयानन्द, श्री प्रेमकुमार सहगल और श्री इकबाल सिंह तोमर का भी आभारी हूँ, जो हमेशा मेरा उत्साहवर्द्धन करते रहे हैं।

मैं विशेष रूप से डा. कृष्णावतार जी का आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने अपना अमूल्य समय निकालकर इस पुस्तक के निर्माण में अकथनीय सहयोग दिया।

अन्त में श्री अशोक चौहान जी का भी आभारी हूँ जिन्होंने पुस्तक को यह स्वरूप देने में अद्वितीय सहयोग दिया है।

नफेसिंह देसवाल
प्रधान-आर्यसमाज देवनगर,
नई दिल्ली-110005

२ प्राक्कथन

जीवात्मा अपने कर्मों के वशीभूत शरीर धारण करता है और अगर वह मानव योनि में है, तो उसके लिए अनिवार्य है कि वह मनुर्भव को चरितार्थ करता हुआ अपने जीवन का यापन करे। मनन करे स्वयं का और मनन करे अपनी संस्कृति और सांस्कृतिक मर्यादाओं का पालन करने वाले महान पुरुषां का।

इसके लिए आवश्यक है कि वह अपनी ऐतिहासिक धरोहर का अवलोकन करने के लिए स्वाध्याय करे। पर दुर्भाग्य से हमारे अपनों ने ही स्वार्थवश सांस्कृतिक परम्परा को नष्ट करने के लिए, हमारे सद्-साहित्य को ही विकृत कर दिया। जब हमारे सद्-साहित्य को ही विकृत कर दिया हो, तो हमें प्रेरणा कहाँ से मिलेगी? क्योंकि प्रेरणा का आधार तो महापुरुष और उनका जीवन ही होता है, जो साहित्य में समाहित होता है।

सौभाग्य से परमपिता परमात्मा की अनुपम कृपा से श्रृंगी ऋषि कृष्णदत्त जी का इस युग में जन्म हुआ और उन्होंने अपनी दिव्य योगस्थ समाधि अवस्था में दिए गए प्रवचनों के माध्यम से हमारे साहित्य में प्रचलित विकृतियां को सार्थक व वास्तविक दृष्टि दी। अगर यह प्रवचनां की दृष्टि हमारे जनमानस में प्रचारित और प्रवाहित हो जाए, तो हमारा समाज उसको अपना कर पुनः से दिव्य-भाव से जीने लगेगा।

पूज्यपाद गुरुदेव के प्रति अनन्य श्रद्धा रखने वाले और वैदिक अनुसंधान समिति के पूर्व मन्त्री श्री नफेसिंह देसवाल जी गुरुदेव के प्रवचनों के विशाल स्वरूप में से, ऐतिहासिकता का सही आकलन कराने वाले, दिव्य स्वरूप को जनमानस तक स्वाध्याय के रूप में पहुँचाने के कार्य में दत्तचित्त होकर संलग्न हैं।

अभी कुछ समय पूर्व ही उनके द्वारा लिखित पुस्तक 'महापुरुषों के जीवन रहस्य' प्रकाशित कराई थी, जिसमें आर्थिक सहयोग उनके मित्र श्री बिशम्बर दयाल जी ने किया था।

पूज्यपाद गुरुदेव के प्रवचनों से सांस्कृतिक शुद्धि के कार्य में संलग्न

श्री नफेसिंह देसवाल जी ने धार्मिक व पौराणिक मान्यताओं में प्रचलित विकृतियों को सही दृष्टि देने के उद्देश्य से प्रवचनों में से ऐसी घटनाओं को इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है, जो समाज में प्रचलित मान्यताओं को निश्चित ही सही दिशा और प्रेरणा देगी।

श्री नफेसिंह देसवाल जी स्वभाव से ही शुद्धता और सत्यता को स्वीकार करने वाले हैं। उनके द्वारा पूज्यपाद गुरुदेव के साहित्य से चुनी हुई विकृतियों के निवारण के लिए 'भ्रान्ति निवारण' पुस्तक निश्चित ही दिव्यता प्रदान करेगी, ऐसी आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है। **डॉ. कृष्णावतार**

३ आभार व धन्यवाद

परमपिता परमात्मा ने सृष्टि का सृजन किया, मानव का अवतरण हुआ, तो ज्ञान की अमूल्य धरोहर वेद को भी ऋषियों के माध्यम से परमेश्वर ने प्रकट किया। पर सृष्टि के काल प्रवाह में प्रवाहित ज्ञान, अज्ञान के तिमिर से आच्छादित होता रहा। प्रेरित करने वाला सद्-साहित्य भी स्वार्थ के वशीभूत कुरीतियां से विकृत हो गया। पर सृष्टि का पिता, अपनी सन्तानों पर कुछ विशेष कृपाएं करता ही रहता है। तभी तो अशुद्ध साहित्य को शुद्धता देने के लिए, पूज्यपाद गुरुदेव का अवतरण हुआ और उनके दिव्य प्रवचनों से जो ज्ञान की दिव्यता प्रवाहित हुई वह कोई चमत्कार से कम नहीं है।

पर यह ज्ञान जन-सामान्य तक पहुँचे, इसके लिए तो आध्यात्मिक भामाशाहों की आवश्यकता है और सौभाग्य से गुरुदेव पर अटूट आस्था रखने वाले श्री हरिराम गुप्ता जी और श्री नफेसिंह देसवाल जी की मित्र-मण्डली सक्षम है। तभी तो छह मास पूर्व ही श्री बिशम्बर दयाल जी जो मित्र-मण्डली के महत्त्वपूर्ण सदस्य हैं, ने अपनी पत्नी श्रीमती रमा देवी जी की स्मृति में 'महापुरुषों के जीवन रहस्य' नामक पुस्तक को आर्थिक सहयोग देकर छपवाया है, जिसका संकलन श्री नफेसिंह देसवाल जी ने ही किया है।

उसी क्रम में श्री नफेसिंह देसवाल जी द्वारा प्रस्तुत पुस्तक 'भ्रान्ति निवारण' प्रकाशित की जा रही है। उक्त पुस्तक भी प्रचलित मान्यताओं को एक सार्थक दृष्टि प्रदान करेगी।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन के लिए आर्थिक सहयोग के रूप अपनी आहुति देने के लिए श्री बिशम्बर दयाल जी का ही परिवार प्रस्तुत हुआ और अवसर चुना है श्री बिशम्बर दयाल जी के जन्म-दिवस 15 अगस्त के उपलक्ष्य में शुभकामना देने के लिए।

2३३2, बस्ती पंजाबियान, सब्जी मण्डी, दिल्ली में रहने वाले श्री बिशम्बर दयाल जी व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रमा देवी जी के दो सुपुत्र और तीन सुपुत्रियाँ हैं। बड़े सुपुत्र श्री उपेन्द्र दयाल व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मधु दयाल, पौत्र श्री मनदीप दयाल व पौत्री कु. गरिमा दयाल, छोटे सुपुत्र श्री पवन दयाल व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मंजु दयाल, पौत्र श्री दीपांश दयाल व श्री अरिन दयाल, उनकी बड़ी सुपुत्री श्रीमती इन्द्रा रनोलिया व पति श्री नरेन्द्र कुमार रनोलिया, जिनके दो सुपुत्र श्री मनीष कुमार रनोलिया व श्री रवीन्द्र पाल रनोलिया व सुपुत्री श्रीमती शिम्मी संघु हैं। परन्तु पाँच वर्ष पूर्व श्रीमती इन्द्रा रनौलिया जी का शरीरान्त हो चुका है। श्री बिशम्बर दयाल जी की दूसरी सुपुत्री श्रीमती निर्मल चहल व पति श्री कुलदीप चहल जिनके एक सुपुत्र श्री हरप्रीत सिंह चहल और सुपुत्री श्रीमती राशि हैं। श्री दयाल जी की तीसरी सुपुत्री श्रीमती मंजु ढिल्लो व पति श्री चन्द्र भूषण ढिल्लो जिनके एक सुपुत्र श्री चन्दन ढिल्लो व सुपुत्री श्रीमती रशिका हैं। उनका पूरा परिवार धार्मिक कार्यों में विशेष रूचि लेता है जो माता-पिता के ही संस्कारों का प्रभाव है।

श्री बिशम्बर दयाल जी के परिवार के सारे सदस्यों ने अपने पिता के जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में इस महान ज्ञान को जनमानस के लिए प्रकाशित करा करके एक विशेष कार्य किया है, अतः मैं उनका आभार और धन्यवाद व्यक्त करता हूँ और आशा करता हूँ कि सद्ज्ञान के प्रकाशन में उनका सहयोग सदैव ऐसे ही प्राप्त होता रहेगा।

डॉ. कृष्णावतार

४ परमात्मा

जिस दिन महापुरुष जन्म लेता है उसी दिन पृथ्वी पर सहस्रों मनुष्य जन्म लेते हैं, परन्तु योग्य अवसर गंवा देने से अन्य मनुष्य पीछे रह जाते हैं। महापुरुष प्राप्त अवसर से योग्य लाभ लेने के कारण आगे बढ़ जाते हैं।

मनुष्य केवल जन्म के कारण उच्च नहीं होता। जो जागता हुआ उन्नति के लिए प्रयत्न करता है, तभी उसकी उन्नति की संभावना होती है। आध्यात्मिक तथा आत्मिक उन्नति के लिए नम्र होने की अत्यन्त आवश्यकता है। नम्रता के बिना मानव की शक्तियां विकसित नहीं हो सकती।

नम्र होकर परमात्मा से प्रार्थना करो। परमात्मा आनन्ददाता है, यह विश्वास करो। वह बिना माँगे ही हमारे ऊपर दया कर रहा है। उसने हमारे कल्याण के लिए ही सब जगत् को प्रकाशित किया है। उसका अपना क्या स्वार्थ था? अतः सन्देह मत करो।

जीवात्माओं के कर्मों को भोगकर, उन्हें शुद्ध करके, मनुष्यदेह में दिये हुए साधनों द्वारा आनन्द प्राप्ति कराना ही सृष्टि को प्रकाशित करने का उद्देश्य है। बद्ध जीवों के कल्याणार्थ ही सृष्टि की रचना है। अतः सब जगत् को प्रकाशित करके हमारे ऊपर कल्याण की वृष्टि कर रहा है।

परमात्मा हमारे जीवन का हर समय साथी बना रहता है। हमें उसकी महत्ता को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रकृति मानव को नीचे की ओर ले जाने वाली है। हमें उसकी उपासना में न लगकर परमपिता परमात्मा की उपासना करनी चाहिए। परमात्मा चैतन्य-स्वरूप है। वह शून्य प्रकृति को कम्पायमान कर रहा है।

जो मानव सत्य को अपने समक्ष रखता है और परमात्मा का भय माना करता है, वह संसार-सागर से अवश्य पार हो जाता है। जो जिसके निकट जाता है, उसके परमाणु उसमें आ जाते हैं। उसके परमाणु आते जायेंगे, उसकी उन जैसी और उतनी प्रवृत्ति बन जायेगी। जब यह आत्मा परमात्मा के निकट जाने वाला बन जाता है तो जितना निकट रहता है, उतना परमात्मा की परिधि में घूम-घूम कर कार्य करने लगता है। परमात्मा ज्ञानियां का भी ज्ञानी है। मानव उसके निकट जितना जाता है, उतना ही ज्ञानी बनता जाता है।

५ परमात्मा से प्रार्थना

प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है कि वह प्रातः एवं सायं प्रभु का चिन्तन करे और कहे कि हे प्रभु! यह सब तेरा है, मेरा नहीं। मैं आपका सेवक बनना चाहता हूँ। मैं आपके रचाए संसार में आया हूँ। मेरा कर्त्तव्य है कि मैं संसार की सेवा करूँ, आपके आदेशों का पालन करूँ, उल्लंघन नहीं। आदेशां का उल्लंघन करने पर यह जीवन समाप्त हो जायेगा। अपने को प्रभु को सौंपकर कहे कि हे विधाता! मेरे जीवन को अच्छा बना, पवित्र बना और प्रखर बुद्धि वाला बना। आपकी प्रेरणा के बिना तो मैं पाप ही पाप करता रहा, शुभ कर्म कहाँ होता। मैं आपकी प्रेरणा का इच्छुक हूँ, मुझे अपनी प्रेरणा दो। आप ही मुझे महान बना सकते हो और कोई नहीं। आप कल्याण करने वाले हो, मेरा भी कल्याण करो।

हे विधाता! आपने हमें कर्म करने के लिए, इस महान प्रकृति में सत्ता देकर, इस विशाल सृष्टि और संसार को बनाया है। इसमें हम अच्छे और बुरे कर्मों का प्रदर्शन कर रहे हैं। सृष्टि के आरम्भ में आपने हमारे लिए स्थावर सृष्टि की स्थापना की। इसके पश्चात् हमारे लिए नाना प्रकार की वनस्पतियाँ, लता, पुष्प आदि उत्पन्न किए। इन सबका सदुपयोग करके हमारा जीवन अलौकिक एवं महत्वपूर्ण बन जाता है। इस सृष्टि में विभिन्न प्रकार की योनियाँ उत्पन्न की हैं।

हे विधाता! वह समय किस काल में आयेगा, जब वेद-मन्त्रों का पाठ प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या के कण्ठ में होगा। जब माता गायत्री का महान स्वरों में गायन गाया जायेगा। आज हम समय का परिवर्तन चाहते हैं। हे देव! हमारे समक्ष उस समय को प्रकट करो, जहाँ गम्भीर व्यक्ति हां, जहाँ प्रत्येक मानव प्रत्येक वस्तु को विचारने वाला हो।

हमें उस समाज की आवश्यकता नहीं, जहाँ अभिमान हो तथा अपने से बड़ा कोई किसी को न मान रहा हो। यदि अभिमानी इस संसार में उत्पन्न हो जायेंगे, तो उनका अभिमान अन्तरिक्ष में रमण करेगा। यह प्रतीत नहीं कि वह अभिमान किस-किस मानव को नष्ट-भ्रष्ट कर देगा। हमें तो वे व्यक्ति चाहिए जो निराभिमानी हों, विद्या से परिपक्व हों अर्थात् जिनके पास अनन्त विद्या हो। आपकी शरण में हम महान बनें, विचित्र बनें और यौगिक बनें, ऐसी हार्दिक प्रार्थना है। हे देव! तू वास्तव में संसार का कल्याण करने वाला है और उसे प्रकाश में ले जाने वाला है। परमात्मा की सृष्टि में दुराचारियों की आवश्यकता नहीं। यहाँ तो सदाचारी, सत्यवादी और विवेकी मनुष्यों की आवश्यकता है। जब कन्याओं और ब्रह्मचारियों को विवेक से देखा जायेगा, तो यहाँ व्यापकता आती चली जायेगी। उपनिषदों की शिक्षा से ब्रह्मचारिणी इतनी दृढ़ होगी कि दूसरे राष्ट्र में जाकर भी अपने विचारों से प्रभावित कर सकेगी।

हे प्रभु! हम चाहते हैं कि हम सदैव आपके गुण गाते रहें और कभी भी आपसे विमुख न हों। हमारा जीवन आपकी महिमा में ही पनपे और संसार की कटुता व मान-अपमान की धाराएं हमारे समीप न आएं। हम कटुता को त्यागते हुए आपकी शरण में आते चले जाएं। हम जन्म-जन्मान्तरां के संस्कारों से भी पार पाना चाहते हैं।

मानव प्रभु का अनुभव तभी कर सकता है, जब वह अपनी कामनाओं को शान्त कर दे। कामना तभी नष्ट होती है, जब मानव संसार से तथा नाना प्रकार की कामनाओं से ऊब जाता है। परमात्मा सदैव एक रस रहता है। इसी प्रकार हम भी एक रस रहें। उस प्रभु से बड़ा वैज्ञानिक कोई नहीं हो सकता, जिसने ब्रह्माण्ड के समान मानव शरीर बना दिया।

हे प्रभु! मेरे हृदय को उज्ज्वल, महान तथा उस पवित्र पथ का गामी बना, जिस पर चलकर मानव की गति महत्ता में परिणित हो जाती है। मेरी चंचल गति का इस प्रकार दमन हो जाए, जैसे सायंकाल का सूर्य। चंचल गति

मेरे लिए घातक तथा मेरे जीवन को नष्ट-भ्रष्ट करने वाली है। इस जीवन में नाना प्रकार की बाधाएं हैं, किन्तु सुपथ पर चलने के लिए तीन वस्तुएं विशेष बाधक बनी हुई हैं- (१) कंचन, (२) कामिनी, (३) जातीय अभिमान। यह कंचन मेरे जीवन में ममतामयी धारा उत्पन्न करके, उसे विकसित नहीं होने देता। इसी प्रकार कामिनी भी मेरे लिए इस जगत् को लुभावना बना रही है। इसलिए मैं कंचन और कामिनी से उसी प्रकार उदासीन होना चाहता हूँ जैसे मनुष्य प्रातःकाल में शैय्या को त्याग देता है। मैं जीवन के सुपथ में जातीय अभिमान, कंचन अभिमान तथा कामिनी अभिमान-तीनों में से किसी को नहीं चाहता। हे प्रभु! मैं इतना अल्पज्ञ हूँ कि यह भी नहीं जानता कि अगली बार मुझे क्या भोजन मिलेगा? आप सब जानते हैं। मैं पाप कर्म करने को भी तभी उद्यत हो सकता हूँ, जब आपका आनन्दमय स्रोत मुझसे पृथक हो जाता है। मैं इस ज्ञान और पवित्रता को अपने से पृथक नहीं होने देना चाहता। मैं अपनी अल्पज्ञ वाणी को आपकी आनन्दमयी वाणी से मिलान करना चाहता हूँ।

६ एक परमात्मा के अनेक नाम

एक ही मनुष्य को उसका पुत्र पिता कहता है, स्त्री पति कहती है, उसका भाई उसको बन्धु कहता है, इस प्रकार विविध सम्बन्धी उस एक ही पुरुष को विविध सम्बन्धों के कारण विविध नामों से पुकारते हैं। इस तरह से एक मनुष्य को विविध नाम मिलने पर भी उसके एकत्व में कोई भेद नहीं आता है।

इसी ढंग से परमात्मा एक होने पर भी उसके अनन्त गुणों के कारण और उसके ही अनन्त गुण सृष्टि के अनन्त पदार्थों में आने के कारण उसको अनन्त नाम दिए जाते हैं।

अग्नि में उष्णता गुण है, वह परमात्मा से प्राप्त हुआ है, इसलिए अग्नि का अग्नि नाम, वास्तविक गुण की सत्ता की दृष्टि से परमात्मा का ही नाम है क्योंकि वह अग्नि का ही अग्नि है। इसी प्रकार अन्यान्य देवों के नामों के विषय में जानना योग्य है।

मानव शरीर में भी देखिए-आँख, नाक, कान आदि इन्द्रियाँ स्वयं अपने-अपने कर्म नहीं कर सकती, परन्तु आत्मा की शक्ति को अपने अंदर लेकर ही अपने कर्म करने में समर्थ होती हैं। इसलिए सब इन्द्रियों के नाम आत्मा में सार्थक होते हैं। अतः आत्मा को आँख का आँख व कान का कान कहते हैं।

इसी प्रकार परमात्मा सूर्य का सूर्य, विद्युत का विद्युत है। सभी देवों के नाम धारण करने वाला परमात्मा है।

सम्पूर्ण जगत् का एक स्वामी और सब जगत् का धारण और पोषण कर्त्ता परमेश्वर ही सब लोगों को नमस्कार करने और उपासना करने योग्य है। उसी की भक्ति सबको करनी चाहिए। वही सबको सच्चा आनन्द देने वाला है।

एक परमात्मा ही सबसे बड़ा शासनकर्त्ता है, उसके ऊपर किसी अन्य का अधिकार नहीं है, सब उसी के शासन में कार्य करते हैं। वही सर्वोपरि है। ज्ञानी मनुष्य तप से परमात्मा को जान सकता है। अज्ञानी मनुष्य इसको जानने में असमर्थ है।

वह सर्वव्यापक होने पर भी साधारण लोगों को वह प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता। ज्ञानी लोगों को वह वैसा ही प्रत्यक्ष दिखाई देता है जैसा दोपहर का सूर्य आकाश में दिखाई देता है।

परमात्मा

परमात्मा संसार में सबसे ऊपर है। वह सब से महान निरभिमानी और संसार का रचयिता है। कण-कण में ओत-प्रोत होने के कारण सर्वव्यापक है। वह सदैव रहने वाला है। वह न कदापि जन्मता है, न नष्ट होता है। वह निर्द्वन्द्व एवं पूर्ण है। वह विद्या में पूर्ण, सृष्टि रचना में पूर्ण, कर्मों का फल देने में पूर्ण अर्थात् हर प्रकार से पूर्ण है।

वह सब में ओत-प्रोत है किन्तु फिर भी सबसे पृथक है। उसकी विचित्रता को बारम्बार मनन करना तथा विचार करना हमारा कर्त्तव्य है। वह विधाता अमूल्य ज्ञान देने वाला है, पवित्र है और संसार के सभी लोक-लोकान्तरां का न्यायाधीश है। वह संसार को कम्पन दे रहा है। उसी कम्पन से संसार चल रहा है।

परमात्मा के विभिन्न नाम

ओ३म्-परमात्मा का मुख्य नाम 'ओ३म्' है। भिन्न-भिन्न आचार्यों ने परमात्मा को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा है। जिस प्रकार मनुष्य का एक मुख्य नाम होता है। शेष नाम उसके गुण व कर्मों के अनुसार होते हैं, इसी प्रकार प्रभु का मुख्य नाम 'ओ३म्' है। शेष नाम उसके गुणों के पर्यायवाची हैं।

'ओ३म्' एक ऐसा शब्द है, ऐसी ध्वनि है जो मानव से किसी भी समय दूर नहीं हो सकती, चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय या रूढ़िवाद में चला जाए। यह इतना व्यापक शब्द है कि उसकी व्यापकता प्रकृति के कण-कण में ओत-प्रोत रहती है। प्रभु ने मानव शरीर का निर्माण करते समय उसकी वाणी का निर्माण इस प्रकार किया है कि

सर्वप्रथम 'ओ३म्' शब्द का उच्चारण हो। मानव चाहे किसी भी राष्ट्र में हो, किसी भी लोक-लोकान्तर में रहने वाला हो, उससे यह 'ओ३म्' शब्द अवश्य उच्चारण होता है।

'ओ३म्' में अ,उ,म् सार्वभौम अक्षर हैं। 'अ', ब्रह्मवाची है। 'उ', आत्मावाची तथा 'म्' प्रकतिवाची है। प्रकतिवाची ही 'म्' का उच्चारण करते हैं और संसार के भौतिक पदार्थों से अपना सम्बन्ध जोड़ लेते हैं।

'ओ३म्' शब्द वाणी का पर्यायवाची है। वाणी से उच्चारण करने का स्वभाव है। बच्चा गर्भस्थल से पृथक होते ही 'ओ३म्' की वाणी ही बोलता है।

जो मानव उस परमात्मा का 'ओ३म्' नाम चिन्तन करता है, वह एक मात्रा का चिन्तन करता है। वह मानवता में रमण करने लगता है।

जो मानव मन में चिन्तन करता है, वह दूसरी मात्रा का चिन्तन करता है। वह देववत् होने के लिए तत्पर होने लगता है।

तीसरी मात्रा वाला प्राणी पृथ्वी के कण-कण में तथा सभी में 'ओ३म्' की प्रतिभा का दृष्टिपात करने लगता है। अपने आप को परमात्मा में ही दृष्टिपात करता है। वह जनता में जनार्दन को देखने लगता है।

इन्द्र

यह परमात्मा इन्द्र है जो वृष्टि करने वाला है। इस संसार को नियन्त्रण में कर रहा है। सारे संसार का स्वामी है। वह महान है, पवित्र है और परम ऐश्वर्य से युक्त है। उसका प्रताप सर्वत्र छाया हुआ है। निद्रावस्था में वह मानव को सवितासत्ता प्रदान करता है।

यमराज

परमात्मा का नाम यमराज भी है। वेदों ने उसे न्यायाधीश भी कहा है। वह इतना महान और अलौकिक है कि मानव उसका पार नहीं पा सकता। वह मानव के हृदय में बैठा हुआ अपनी यमपुरी रचा रहा है। जो भी हम कर्म करते हैं, जैसा हमारा कर्म है, उसका वह फल देने वाला है। उसको यम नाम से भी पुकारा जाता है। मानव जो भी कर्म करता है, उसका देखने वाला है, साक्षी है।

गौतम

परमात्मा का नाम गौतम है। 'गौ' नाम प्रकृति का है। 'ता' नाम आत्मा का है। इन दोनों का स्वामी होने से उसका नाम गौतम है।

सरस्वती

प्रभु का नाम सरस्वती भी है जो हमारे कण्ठ में विराजमान होकर माधुर्य प्रदान करे और हमें अपने जीवन को ऊँचा बनाने में सहायता दें।

शिव

संसार की रचना करके आत्मा को हर पदार्थ देता है। संसार की रचना और प्रलय करता है। वह सबके लिए कल्याणकारी है। परमात्मा मनोहर तथा अलौकिक है। सृष्टि में उसकी ज्योति व्यापक है जिससे संसार प्रकाशित हो रहा है। वह प्रभु शिव-अत्यंत मंगलस्वरूप है। अतः वह शिवतर-मोक्ष प्रदाता है।

महादेव

वह देवों का देव है। अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी व वृक्ष आदि सब उसी के लिए दिये हुए हैं। खान-पान की सामग्री का दाता है। ज्ञान और प्रकाश देने वाला है।

विश्वकर्मा

परमात्मा का नाम विश्वकर्मा भी है। उसने अपनी कारीगरी से संसार को बनाया है। माता के गर्भस्थल में ७२, ७२, १०, २०२ नाड़ियों वाले इस मानव शरीर को निर्मित किया है। प्रत्येक मानव व देवकन्या का रूप पृथक-पृथक है। ऐसा कहते हैं कि यह सब अपने कर्मों के अनुसार हो रहा है। स्वयं कोई भी दुःखों को नहीं भोगना चाहेगा, परन्तु कर्मों का फल देने वाला परमात्मा है। राजा केवल भौतिक अपराधों का ही फल दे सकता है, परन्तु मानव जो पाप मन और बुद्धि से करता है, उसका फल परमात्मा देगा, राजा नहीं दे सकता।

मित्र

वेदों ने परमात्मा को मित्र कहा है। जो प्रभु से मित्रता कर लेता है, उसे संसार में किसी मानव को मित्र बनाने की आवश्यकता नहीं है। जब वह प्रभु को मित्र बना लेता है तो उसके गुण उसमें आ जाते हैं। जो प्रकृति के आवेशों को, अपने स्वार्थों को तथा अपनी क्लिष्टताओं को त्याग देता है, वही प्रभु को मित्र बना सकता है। उसकी प्रभु में श्रद्धा हो जाती है। ऐसे मानव के लिए यह संसार तुच्छ बन जाता है। वह प्रभु के आंगन में रमण करने लगता है।

गणपति

परमात्मा सर्वगणों का पति है। वह संसार में गणना के तुल्य है। उस परमात्मा को गणेश भी कहते हैं। गणेश उसको कहते हैं जिसकी प्राण शक्ति प्रबल हो।

माता-पिता

परमात्मा को माता-पिता दोनों कहा जाता है। माता इसलिए कि वह शून्य प्रकृति को सत्ता देकर हमें जनने वाली है। उसकी वाणी हमें पवित्र बना देती है तथा दुर्गुणों का नाश कर देती है। पिता इसलिए कि वह हमारा पालन करता है और हमारे लिए सृष्टि को प्रारम्भ करता है।

ब्राह्मण

परमात्मा का नाम पुरोहित भी है और ब्राह्मण भी। ब्राह्मण उसी को कहते हैं जो प्रकाश देने वाला हो। परमात्मा हमारी आत्मा में बैठा हुआ, हमें प्रकाशित कर रहा है। उसी को ब्राह्मणों का ब्राह्मण कहा जाता है। प्रकाशमान को ब्राह्मण कहा जाता है।

दुर्गा (दुर्गे)

परमात्मा का नाम दुर्गा भी है क्योंकि वह दुर्गेविति है। हमारे दुर्गुणों को समाप्त करने वाला है। परमात्मा माता दुर्गा है तथा आत्मा उसका बालक है। दुर्गा नाम इसलिए भी है कि वह संसार को उत्पन्न करने वाला है। शून्य प्रकृति को प्राणरूप संज्ञा देता है जिससे यह अपना कार्य करने लगती है।

वसुन्धरा

परमात्मा का नाम वसुन्धरा भी है क्योंकि यह ब्रह्माण्ड उसी के आश्रित होकर भ्रमण करता है। उस परमात्मा ने नाना प्रकार की सृष्टि को चला रखा है। परमात्मा को निर्गुण रूपों में ही स्वीकार करना सुन्दर होगा क्योंकि आत्मा का अपना अस्तित्व होता है और प्रकृति का अपना।

अग्नि

वह प्रभु अग्नि-ज्ञानस्वरूप है अर्थात् ब्रह्माण्ड का ज्ञान रखता है।

वरुण

राष्ट्र में राजा का स्थान सबसे ऊँचा होता है, अतः देशभर में जो सबसे अच्छा व्यक्ति होता है, वह राजा बनाया जाता है। समस्त ब्रह्माण्ड का राजा वह हो सकता है जो सारे ब्रह्माण्ड में सर्वोत्तम हो। वह हमारा प्रभु

वरुण-सर्वोत्तम है।

बृहस्पति

वह परमात्मा बृहस्पति भी कहलाता है। वेद-शास्त्र और आकाशादि, समस्त ब्रह्माण्ड का वही पति है।

विष्णु

प्रभु सर्वव्यापक है, वह सर्वत्र स्वयं विद्यमान है। उसको किसी के द्वारा किसी बात की जानने की आवश्यकता नहीं, वह विष्णु-सर्वव्यापक है।

सोम

प्रभु शान्ति आदि गुणों से युक्त और सर्व जगदुत्पादक है।

उस परमात्मा के अनन्त नाम हैं। आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आपः, प्रजापति, सर्वेश्वर आदि और भी अनेक नाम हैं। परमात्मा के विषय में यह उच्चारण करना उचित नहीं है कि वह योगी या अन्य महापुरुष बनकर आ गया। किसी भी महापुरुष को परमात्मा मानना असंगत है। परमात्मा को संसार में जन्म धारण करने की आवश्यकता कभी नहीं होती। परमात्मा सर्वव्यापक है और विशेष वैज्ञानिक है।

ब्रह्मा

परमपिता परमात्मा का नाम भी ब्रह्मा है। इस संसार में आदि सृष्टि के गुरू भी ब्रह्मा माने जाते हैं। जो ज्ञानी होता है, वेदपाठी होता है और ब्रह्म को जानने वाला होता है, उसे ब्रह्मा की उपाधि दी जाती है। सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा हुए जो प्रजापति कहे जाते थे। उन्होंने अपने को जाना तथा जान करके उस प्रणाली को जाना, जिससे स्वरों को जाना जाता है।

सब अक्षरों का विकास 'ओ३म्' से होता है जो परमात्मा का मुख्य नाम भी है। प्रत्येक वेद-मन्त्र 'ओ३म्' रूपी धागे से पिरोया जाता है, जैसे माला। इसका कारण यह है कि जितने शब्द वेद-मन्त्र में होते हैं, उन सबका विकास 'ओ३म्' से होता है।

वेद को परमात्मा का ज्ञान उच्चारण करने का कारण यह है कि संसार की सभी भाषाएं परिवर्तित होती रहती हैं, परन्तु वेद का वाक्य परिवर्तित नहीं होता। वह अखण्ड रहता है क्यांकि इसका सम्बन्ध 'ओ३म्' से रहता है।

वाणी और विद्या दोनों को सरस्वती कहते हैं। विद्या को पान करने वाले ब्रह्मा कहलाते हैं। पुत्री नाम है, जो अपने आधीन रहने वाली हो, जैसे माता की पुत्री, माता-पिता के आधीन रहकर उनकी आज्ञा का पालन करती है, इसी प्रकार वाणी और वेद विद्या ब्रह्मा की आज्ञा का पालन करती है और उसकी पुत्री कहलाती है।

जो वेद को अमृत जानकर पान करता है तथा उसको अमृत स्वीकार करता है, अशुद्धियां से दूर रहता है, जिसके मन, वचन और कर्म में यथार्थता होती है, ऐसे महापुरुष को यज्ञ में ब्रह्मा का स्थान देना चाहिए। जिसका एक-एक श्वास ब्रह्म से दूर न हो, उसको ब्रह्मा कहा जाता है।

ईश्वरीय और वैदिक पद्धति लाने वाले को ब्रह्मा कहते हैं। उसके विचारों में व्यापकवाद आ जाता है। पशु, पक्षी, मृगराज तथा मानव सभी प्राणियों के लिए उसके महान विचार होने लगते हैं। वह ब्रह्मवत् को प्राप्त होता हुआ ब्रह्म की सृष्टि में किसी भी काल में पाप नहीं करता।

परमात्मा स्वयं ही सृष्टि की स्थापना करता है। प्रलयकाल में प्रकृति अव्यक्त रूप में रहती है। उस सूक्ष्म प्रकृति को महत्तत्व रूप में परिवर्तित करके, उसमें प्राण प्रदान करके, क्रिया पैदा करके तन्मात्राओं को पैदा करता है। तन्मात्राओं से पंचमहाभूत, पंचमहाभूतां से यह संसार बन जाता है। प्रलयकाल में यह सारी सृष्टि तथा सारे जीव

परमात्मा के गर्भ में सो जाते हैं।

- ☞ **कर्मों के फल को मानव नष्ट नहीं कर सकता।**
- ☞ **प्रारब्ध सदा कर्मों से बना हुआ होता है।**
- ☞ **दुराचारी मानव भी अपनी प्रवृत्ति बदलकर मुक्ति प्राप्त कर सकता है।**
- ☞ **जो मानव दूसरों को नष्ट करने का विचार बनाता है, वह स्वयं नष्ट हो जाता है।**
- ☞ **जो मानव संसार में परमात्मा से भयभीत रहता है, वह ऋषि बन जाता है।**
- ☞ **संसार में जीवन का श्राद्ध होना चाहिए, मृत्यु का नहीं।**
- ☞ **यज्ञ मानव का जीवन है।**
- ☞ **संसार एक कल्पवृक्ष है, यहाँ मानव जैसी कल्पना करता है, वैसा ही बन जाता है।**
- ☞ **संसार एक विचारशाला है, एक प्रकार की विज्ञानशाला है, यज्ञशाला है।**

৩ प्रकाशक आत्मा-परमात्मा

हमारा आत्मा भी प्रकाशक है और परमात्मा भी प्रकाशक है। आत्मा के प्रकाश से यह शरीर प्रकाशित होता है तथा परमात्मा के प्रकाश से यह संसार प्रकाशित होता है।

प्रभु की अनुपम प्रतिभा मानव को चेतनित करती रहती है। इसके अन्तःकरण में, हृदय रूपी गुफा में, एक अनुपम धारा मानव के समीप नित्यप्रति परमात्मा से प्राप्त होती रहती है। जब दिवस आता है, तो रात्रि सूर्य के गर्भ में लय हो जाती है। प्रातःकाल मानव को नवीन चेतना प्राप्त होती है। उस चेतना का स्रोत, परमपिता परमात्मा की चेतना है।

परमात्मा हमारी आत्मा के सामने बैठा है। मानव जो भी कर्म करता है, उसके संस्कार अन्तःकरण में नियुक्त हो जाते हैं। जब आत्मा तुच्छ कर्म करने को चलता है, तो उसे संकेत मिलता है कि अरे मानव! यह कुमार्ग है, इस पर न जा। कर्म कर देने पर परमात्मा उसे अन्तःकरण में नियुक्त कर देता है। उसका भोगना अनिवार्य है। बिना भोगे काम नहीं चलता।

यह कहना मिथ्या है कि तपस्या से उन्हें समाप्त किया जा सकता है। जब तक अन्तःकरण में संस्कार है, तब तक भोगना अनिवार्य है। जिज्ञासु इन्हें भोगने के पश्चात् नए संस्कार नहीं बनने देता। अतः उसे भोगने के लिए भी कुछ नहीं रहता।

मानव का हृदय तथा आत्मा नास्तिक नहीं होते। प्रकृति के आवेशों में आकर बुद्धि नास्तिक बन जाती है। मन का संकल्प इतना सूक्ष्म बन जाता है कि वह संसार के ऐसे तत्त्व बटोरकर उसके समक्ष प्रस्तुत कर देता है कि वह भौतिकता में आकर परलोक का विचार ही छोड़ देता है। वह अपने जीवन और सृष्टि को यहीं तक सीमित कर लेता है। इससे हृदय में नास्तिकता आ जाती है। यह नास्तिकता तब तक रहती है, जब तक मन प्रकृति के आवेशों में रहता है।

नास्तिक के अन्तःकरण में ऐसे संस्कार जमे हुए होते हैं जो आत्मा के प्रकाश का दुरूपयोग करते हैं। अपने इन तुच्छ संस्कारों के वशीभूत होकर मानव कष्ट प्राप्त करता रहता है। इनसे छुटकारा पाने का प्रयत्न करना चाहिए। एक नास्तिक भंवर में पंळसी नाव के समान होता है। सबसे बड़ा नास्तिक वह है, जो कंठ से ऊपर-ऊपर परमात्मा का चिन्तन करता है, परन्तु हृदय में महान क्लिष्टता है। वह परमात्मा की अमृतमयी आड़ में पाप करता है।

८ आत्मा

यह आत्मा सत्-चित् है तथा आनन्द के लिए सदा लालायित रहता है। जब प्रभु के गुणों का गुणगान गाने लगता है तो यह आत्मा तृप्त हो जाता है। जब मानव जिज्ञासु बनकर प्रभु की शरण में जाता है तो उसे अनुभव होने लगता है कि वह ममतामयी माता की छत्र-छाया में विराजमान है। माता की लोरियों में बालक अपने जीवन को पनपाता है। युवा होकर अपना कुटुम्ब बना लेता है, किन्तु माता अपनी नम्रता तथा आनन्द के स्रोत को किसी भी समय नष्ट नहीं करती। इसी प्रकार वह प्रभु माता जिसके द्वार से चेतना का स्रोत उत्पन्न होता है, उसे पान करने के पश्चात् मानव अमरावती को प्राप्त हो जाता है।

प्रभु संसार में सबसे उदार है। उसे कोई अनिष्ट व अशुद्ध उच्चारण करता है, कोई असभ्यता से कहता है, कोई सभ्यता से उपासना करता है, परन्तु उसकी देन सबके लिए समान है। प्रभु से मिलान करने के इच्छुक को उसी के समान उदार हो जाना चाहिए। मानव की उदारता भी प्रभु को छूने लगती है और प्रभु की उदारता मानव को छूने लगती है। उस समय मानव ही क्या, मृगराज तथा सर्प आदि भी उस मानव को देवालय स्वीकार करने लगते हैं। उसके उदार वाक्यों को सुनने के लिए उत्सुक रहते हैं। इस सृष्टि के सभी प्राणी उसकी उपासना करने लगते हैं।

हमें उस प्यारे प्रभु का धन्यवाद करना चाहिए। प्रभु का धन्यवाद कहने से धन्यवाद प्रभु का नहीं होता, अपने स्वयं का धन्यवाद होता है। अपना सौभाग्य स्वीकार करना चाहिए कि प्रभु की चेतना और अनुपमता हमें प्राप्त हो रही है। जो मानव सत्य को अपने समक्ष रखता है और परमात्मा का भय माना करता है, वह संसार-सागर से अवश्य पार हो जाता है। आत्मा कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। यह तो नाना पकार की योनियों में, कर्मों के तथा संस्कारों के अनुकूल भ्रमण करता रहता है।

आत्मा के न रहने से शरीर शव बन जाता है, मानव जड़ता को प्राप्त हो जाता है। आत्मा शरीर को चेतनित बनाए रहती है। आत्मा के लिए संसार रचा जाता है। रचने वाला प्रभु है और रची जाने वाली प्रकृति है। जो आत्मवेत्ता पुरूष होते हैं, वे आत्मा को जान लेते हैं, उनके संपर्क में जाने से मानव की ऊर्ध्व गति हो जाती है। आत्मवेत्ता प्रकृति के आंगन को नहीं छूना चाहते जिससे विडम्बना और दाह हो।

जब मानव की स्मरण शक्ति ऊँची हो जाती है तब वह योगी बनकर, आत्म-दर्शन करके, परमात्मा के दर्शन की स्थिति में पहुँच जाता है। आत्मा ब्रह्म बन सकता है, किन्तु परब्रह्म कदापि नहीं बन सकता। द्वापर काल तक किसी भी ऋषि ने आत्मा और परमात्मा को एक नहीं माना, पृथक-पृथक ही माना है।

प्रकृति से उपराम होकर आत्मा, परब्रह्म परमात्मा में रमण करने लगता है। चित्त के आवेश समाप्त होने पर, आत्मा मुक्ति अवस्था में चली जाती है। जगत में आने का उद्देश्य, मन व प्राण को एकाग्र करके चित्त के संस्कारों को नष्ट करना है।

आत्मा के दो लक्षण-ज्ञान और प्रयत्न सदा ही उसके साथ रहते हैं। वृक्ष तथा वनस्पतियां में इन गुणों का अभाव होने के कारण, उनमें आत्मा नहीं माना जाता। यह भली-भांति सिद्ध हो चुका है कि वृक्षों तथा वनस्पतियां में आत्मा नहीं होता। ये तो मानव के भोज्य पदार्थों के रूप में परमात्मा ने दिये हैं। परमात्मा के ज्ञान वेद का भी यही आदेश है। इसलिए इनके आहार में कोई संकोच नहीं। यदि मानव मांसाहार करता है तो यह उसकी तुच्छता है, हीनता है, निर्लज्ञता है तथा पाप है। वास्तव में मानव का जीवन उसी काल में महत्वदायक हो सकता है जब उसका आहार तथा रसना शुद्ध होवे।

आत्मा इतना सूक्ष्म है कि इसको नेत्रों से नहीं देखा जा सकता। भौतिक विज्ञानवेत्ता इसे सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से

नहीं देख सकते। इतना सूक्ष्म है कि केश के अगले गोल भाग के ६० भाग किए जाएं, फिर एक भाग के ९९ भाग हों, फिर ९९वें भाग के ६० भाग किए जाएं तथा ६०वें भाग के ९९ भाग किए जाएं, उनमें एक भाग के बराबर होता है। केश का ६०×९९×६०×९९ = ३,५२,८३६००वां भाग-इसको केवल योगी ही दृष्टिपात कर सकते हैं।

- ☞ **हृदय से उच्चारण किया हुआ शब्द मानव के हृदय को बहुत प्रिय लगा करता है।**
- ☞ **अन्धकार से प्रकाश में लाने को ही जागरण कहा जाता है।**
- ☞ **ऊँचे कार्य का ऊँचा परिणाम अथवा फल होता है।**
- ☞ **अन्धकार से प्रकाश में लाने को ही जागरण कहा जाता है।**
- ☞ **ऊँचे कार्य का ऊँचा परिणाम अथवा फल होता है।**
- ☞ **ऊँची संकल्प शक्ति से मानव के रोग भी शान्त हो जाते हैं।**
- ☞ **परमात्मा से मिलान करने वाली विद्या का पान करना ही सोमरस पान करना है। सोम नाम परमात्मा का रस नाम ज्ञान का है।**
- ☞ **विकल्प का कोई आदि और अन्त नहीं होता।**
- ☞ **संकल्प नाम परमात्मा का और विकल्प नाम प्रकृति का है।**
- ☞ **मन और प्राण के समन्वय का नाम योग है।**
- ☞ **प्राणायाम मन को आत्मा के साथ बाँधने वाली रस्सी है।**

९ प्रकृति

प्रकृति पूर्ण है। इसके बिना न तो संसार है और न हमारा शरीर। हमारे शरीर में जो ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां, अहंकार आदि है, इनसे सूक्ष्म मन है जो इन्हें नियंत्रित करता है। मन से सूक्ष्म बुद्धि, बुद्धि से सूक्ष्म चित्त। इस चित्त से सूक्ष्म आत्मा। ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां, मन, बुद्धि व चित्त सभी प्रकृति का स्वरूप है। ये सब प्रकृति के आवेशों में आ जाते हैं। जब हम इन पर नियन्त्रण करते हैं तो प्रकृति का स्वरूप इनमें समाहित हो जाता है।

आत्मा प्रकृति से सूक्ष्म है। परमात्मा, आत्मा से भी सूक्ष्म है। प्रकृति जड़ है, परमात्मा चैतन्य है। दोनों के मध्य में आत्मा भी चैतन्य है। परन्तु जीवात्मा अल्पज्ञ है और परमात्मा सर्वज्ञ। सबसे कम गुण प्रकृति में हैं, इससे अधिक जीवात्मा में और सबसे अधिक परमात्मा में हैं।

जो ऐसे गुण वाले से सम्पर्क करेगा, वैसे गुण उसमें ओत-प्रोत हो जायेंगे। जैसे कोई मानव यदि दुराचारी का संग करता है, तो उसमें दुराचारी के अवगुण आ जाते हैं।

यदि आत्मा उन्नति चाहता है, तो उसे अधिक गुण वाले (परमात्मा) से सम्पर्क करना चाहिए। यदि कम गुण वाली प्रकृति के सम्पर्क में आता है, उसका संग करता है, तो उसमें हीनता आती चली जाती है। उसे वह आनन्द प्राप्त नहीं होता, जो परमात्मा के सम्पर्क में आने से होता है।

प्रकृति सत् है। जीव सत्-चित्त और परमात्मा सत्-चित्त-आनन्द। जीव सत्-चित् होने के नाते आनन्द का इच्छुक रहता है। आनन्द परमात्मा से मिलता है, प्रकृति में आनन्द नहीं है। इसलिए प्रकृति का सम्पर्क लाभकारी नहीं है।

प्रकृति मानव को नीचे ले जाती है। हमें इसकी उपासना में न लगकर उस परमपिता परमात्मा की उपासना करनी चाहिए जो चैतन्य स्वरूप है और शून्य प्रकृति को कम्पायमान बना रहा है। हमारे जीवन को भी कम्पायमान (गतिमान) बना रहा है। यह संसार तब तक प्रतीत हो रहा है जब तक वह परमात्मा इस ब्रह्माण्ड के कण-कण में तथा प्रकृति में ओत-प्रोत हो रहा है।

नाना प्रकार के लोक-लोकान्तर, चन्द्रमा, सूर्य, जलाशय, समुद्र आदि हैं, परन्तु जब यह परमात्मा ब्रह्माण्ड को प्रलय में परिणित कर देता है, तो प्रकृति शून्य रूप हो जाती है और अन्धकार छा जाता है।

प्रकृति जो नाना प्रकार के आवेशों में रहने वाली है, उसको नाना नामों से पुकारा जाता है जैसे देवी, माँ, काली, वैष्णवी, धेनु, रेणुका, दुर्गेवेति, सोमधामकेतु आदि-आदि। मानव को स्थूल रूप का भोजन तथा स्थूल रूप की प्रवृत्तियां इसी प्रकृति देवी से प्राप्त होती हैं। इसलिए हमें प्रकृति को जानना चाहिए। जैसे माँ अनेक रूपों में परिणित रहती है, कहीं ब्रह्मचारिणी, कहीं देवी, तो कहीं माँ रूप में, इसी प्रकार प्रकृति माता भी अनेक रूपों में परिणित हो रही है। कहीं पृथ्वी रूपों में, कहीं खनिजों के रूपों में, कहीं खाद्य रूपों में , तो कहीं शक्ति रूपों में है। अतः हमें इस प्रकृति रूपी दुर्गा माता को जानना चाहिए। प्रकृति को वसुन्धरा भी कहते हैं। पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, सूर्य आदि भी जड़ देवता माने गए हैं। इनकी भी पूजा करनी चाहिए। इनके विज्ञान को जानना ही इनकी पूजा है। पृथ्वी माता संसार में ओज और तेज देती है। अन्न और वनस्पति देती है। संसार को अपने गर्भ में धारण करती है। वेद कहता है कि पृथ्वी को नमन करो, इसका अभिप्राय, भुजाओं से नमन करने का नहीं है। बल्कि यह है कि पृथ्वी जो तुम्हें देती है, उसे आदर के साथ ग्रहण करो। पृथ्वी नाना प्रकार के पदार्थ देती है। राष्ट्र को चलाने के लिए नाना धातुएं देती है। ज्ञान-विज्ञान के द्वारा पृथ्वी तत्त्वों को जानने का नाम ही पृथ्वी का आदर करना है।

पृथ्वी को अहिल्या भी कहा जाता है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम भू-गर्भवेत्ता थे। उन्होंने एक यत्र का निर्माण

किया था, जिसका नाम 'अहल्या प्रतिभा स्वातन यन्त्र' था। उस यन्त्र में यह विशेषता थी कि पृथ्वी में दस-दस योजन अन्दर का निर्णय करा देता था कि अमुक धातु कितनी दूरी पर है? नाना प्रकार की धातुओं का निर्माण कितनी दूरी पर हो रहा है? नाना प्रकार के खनिज और खाद्य पदार्थों का ज्ञान करा देता था। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने राजा निषाद से कहा था कि वज्रतुल्य में कैसा अन्न उत्पन्न हो सकता है? अतः अहिल्या (भूमि) के उद्धारक कहलाये गए।

पृथ्वी में खनिज पदार्थों का निर्माण तपने से ही होता है। पृथ्वी के तप जाने पर सूर्य की किरणों की प्रतिभा, उसमें आनी आरम्भ हो जाती है, जिससे नाना धातुओं का जन्म हो जाता है।

जल-जल को 'आपः' भी कहते हैं। सृष्टि के आरम्भ में पृथ्वी के रचने से पूर्व परमात्मा ने जल की मेखला बनाई थी जो समुद्रों के रूपों में है। यदि समुद्र न होता तो मानव जीवन भी नहीं होता। यह समुद्र रूपी मेखला, उस विष को निगलती है जिसे पृथ्वी उगला करती है। जल की सहायता से ही विज्ञानवेत्ता नाना प्रकार के निर्माण करते हैं। अग्नि से संरक्षण करने वाला जल कहलाता है। इसको अग्नि का बिछौना भी कहते हैं। जहाँ भी ऊँचे से ऊँचा उद्योग चलता है वहां नाना परमाणुओं से यन्त्र बनाए जाते हैं। उनमें नाना प्रकार की आकर्षण शक्ति को लेकर विद्युत का स्वरूप बनता है। परन्तु जल की पुट उसमें भी होती है क्योंकि जल उसको शीतल बनाता है। यदि जल उसको शीतल न बनाएगा, तो वह कार्य नहीं कर सकेगा।

जल प्राणों का बिछौना है, क्योंकि यह प्राणों में रमण हो करके विद्युत तथा अग्नि को शान्त करता है।

अग्नि

अग्नि में एक अरब चौरासी लाख तथा वायु में एक करोड़ ९६ लाख प्रकार की तरंगें होती हैं। इनको जानकर मानव वास्तविक वैज्ञानिकता को प्राप्त हो जाता है। एक मानव अपनी प्राण-शक्ति के द्वारा अग्नि तथा विद्युत के भेदां को जानता हुआ, इस पृथ्वीमण्डल से सूर्य लोक की यात्रा करने में सफल हो जाता है। जितना आग्नेय तत्त्व जाना जायेगा, उतना ही मानव आग्नेय लोकों को प्राप्त हो सकेगा। शब्दों का वाहन अग्नि ज्योति है। इस पर सवार होकर शब्द क्षण समय में पृथ्वी की साढ़े सात परिक्रमा कर लेता है। इस अग्नि को जानना चाहिए। फिर आत्मा की ज्योति को जानना चाहिए। इसको जानकर धर्मज्ञ मानव विशाल ज्योतिष्मान् बन जाता है। वाणी का वाहन यह अग्नि है। यह वाणी अग्नि पर विश्राम करती हुई व्यापक बन जाती है।

शचि

शचि नाम विद्युत् का है जो जल में, वायु में, अग्नि में और पृथ्वी में रमण करती है। इन सबका सम्बन्ध अन्तरिक्ष से है। अन्तरिक्ष का सम्बन्ध नाना लोक-लोकान्तरां से है। विद्युत् तन्मात्राओं का रूप है। विद्युत् वह है जो प्राणों के संघर्ष से उत्पन्न होती है। जब मेघ अन्तरिक्ष में होते हैं, तो इन्द्र रूपी वायु अपने प्राण रूपी वज्रों का आक्रमण करता है। जल और इन्द्र दोनां का घर्षण होता है, इससे विद्युत् उत्पन्न हो जाती है। विद्युत् जल में रहती है, जिसे नाना यन्त्रों से उत्पन्न करते हैं।

वायु

दर्शनों में तीन प्रकार की वायु का वर्णन है-(१) इन्द्र, (२) यम, (३) बृहस्पति।

जब यह आत्मा शरीर को त्यागकर अन्तरिक्ष में जाता है तो अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा यम नाम की वायु में रमण करता है। वायु शक्तिदायक है। यह शरीर त्यागने के पश्चात् आई हुई आत्माओं को आकर्षित करके शान्ति देता है। वायु अव्याहत गति वाला होता है, परन्तु इसकी गति मन से कुछ सूक्ष्म होती है। धीमी गति होने के कारण, यह पार्थिवता में आने से स्थूल बन जाती है। जिस प्रकार के परमाणुओं का इससे मिलान होता है, उसी

प्रकार की बन जाती है और वैसा ही नृत्य करने लगती है। यह नृत्य पृथ्वी, जल व अग्नि आदि सभी के परमाणुओं में स्वाभाविक होता है। इन सबके परमाणुओं में गति का मूल कारण वायु ही है। वायु में वह गति अन्तरिक्ष से आती है। अन्तरिक्ष ही इसकी गति का स्रोत है।

१० अन्तरिक्ष

(आकाश)-अन्तरिक्ष परमाणुओं का समूह है। इसमें सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु भी है, महान से महान भी है और क्लिष्ट से क्लिष्ट भी है। जो मानव अपने को तथा अपने गृहस्थ को जैसा बनाना चाहता है, उसी प्रकार के परमाणु अन्तरिक्ष से आने आरम्भ हो जाते हैं। मानव क्रोध करता है तो उसे क्रोध आने लगता है क्योंकि क्रोध के परमाणु ही उसके समीप अधिक आने लगते हैं। 'नाग' नाम का प्राण इन्हें अपने में रमण करता रहता है। परिणाम यह होता है कि मानव क्रोध में भस्म हो जाता है।

पंच-तन्मात्रा

पंचतन्मात्राओं को न तो सूर्य की अग्नि नष्ट कर सकती है और न चन्द्रमा की कान्ति ही शीतल कर सकती है। ये जिस प्रकार पृथ्वी पर हैं, उसी प्रकार सूर्य पर भी रमण कर रही हैं। जब मानव इस शरीर को त्यागता है, तो सूक्ष्म शरीर के साथ, स्थूल पंच महाभूत न जाकर, सूक्ष्म तन्मात्राएं ही जाती हैं। इन सूक्ष्म तन्मात्राओं द्वारा मानव रमण करता रहता है। इन्हीं तन्मात्राओं के मध्य में मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार की प्रतिभा होती है। इनमें मानव के जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार होते हैं। मानव जब इन तन्मात्राओं को जानकर इनका यन्त्र बना लेता है, तो उस वाहन पर सवार होकर, सूर्य की यात्रा कर सकता है। उसको सूर्य की अग्नि भस्म नहीं कर सकती।

भौतिक विज्ञान में पंचतन्मात्राओं से अणुओं व महा-अणुओं को एकत्रित करके यन्त्रों का आविष्कार किया जा सकता है।

दूसरी प्रकार की तन्मात्राओं का सम्बन्ध आत्मिक विज्ञान से है। इन्हीं से अन्तरिक्ष की रचना मानी जाती है। मन और बुद्धि भी इन्हीं से रचित होते हैं। इस प्रकार अन्तरिक्ष को रचित माना जाता है।

ब्रह्म की चेतना प्रकृति को प्रभावित करती रहती है। उसी के प्रकाश तथा चेतना से यह संसार चेतनित रहता है। परमात्मा ही सर्वत्र व्याप्त हो रहा है, ऐसा प्रायः मानव स्वीकार करता है। संसार में विचारक और व्याख्याता केवल प्रकृति और आत्मा की ही विवेचना करते हैं। परमात्मा का विषय अनिर्वचनीय है। वह ऐसा प्रकाश है जो आँखों से देखा नहीं जा सकता तथा वाणी से उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। आत्मा के न रहने पर यह शरीर शव बन जाता है अर्थात् जड़ बन जाता है। इसी प्रकार चेतना के न रहने पर यह प्रकृति भी जड़ बन जाती है तथा शून्यवत् को प्राप्त हो जाती है।

यह जो परमात्मा का जगत् है, इसके एक-एक कण में परमात्मा की सर्वसृष्टि का चित्रण हो रहा है। जब हम यह विचारते हैं कि प्रत्येक अणुमात्र में, परमाणुमात्र में मानव की निधि विराजमान रहती है तो इस प्रकार एक-एक अणु में सर्व ब्रह्माण्ड की आभा दृष्टिपात आने लगती है।

संसार एक कल्पवृक्ष है, यहां मानव जैसी कल्पना करता है वैसा ही बन जाता है। इसे विचारशाला, विज्ञानशाला, यज्ञशाला और मृतमण्डल भी कहा जाता है। आत्मा नाना प्रकार की योनियों में कर्मों तथा संस्कारां के अनुकूल भ्रमण करता रहता है। आत्मा के विशेष गुण हैं, ज्ञान और प्रयत्न। ज्ञान से वह प्रभु को जान लेता है तथा प्रयत्न से प्रभु में रमण करता हुआ आनन्द ही आनन्द भोगता रहता है।

इस आत्मा के पास जब प्रकृति के गुण अधिक आ जाते हैं, तो उस समय उसमें नाना विकृतियां आ जाती हैं। जब इसमें परमात्मा के गुण आ जाते हैं तो ज्ञान प्रचण्ड हो जाता है। आत्माओं की संसार में कोई भी गणना नहीं कर सकता। जैसे परमात्मा की सृष्टि अनन्त है, प्रकृति अनन्त है। प्रकृति और परमात्मा दोनों पूर्ण हैं। परमात्मा और प्रकृति के मध्य रहने वाली आत्माओं की गणना अनन्त है।

आत्मा का भोजन ज्ञान-विज्ञान है, जो शरीर को त्यागने के पश्चात् भी उसके साथ जाता है। हमें आत्मा को

भोजन देने का प्रयास करना चाहिए। आत्मा का भोजन है-आत्मज्ञान, परमपिता परमात्मा की उपासना, परमात्मा का चिन्तन, वेदों का अध्ययन, यज्ञ करना, सत्संग करना और आर्ष पद्धति को ग्रहण करना। जब आत्मा इन पदार्थों से तृप्त रहेगा तो आत्मा से वही धारा उत्पन्न होगी, जिससे मन पवित्रता को प्राप्त होता रहता है।

परमात्मा विचारकों का विचारक है। वह सदैव अखण्ड है। वह इतना महान तथा विभु है कि सर्वत्र ओत-प्रोत है। यह अन्तरिक्ष प्रभु का मस्तिष्क है। दिशाएं उसकी भुजाएं हैं। पृथ्वी उसका तालू है। नदियां उसके नाना स्रोत हैं और पर्वत अस्थियां हैं।

अन्तरिक्ष-एक कल्पवृक्ष

अन्तरिक्ष को ऋषि-मुनियों ने एक प्रकार का कल्प-वृक्ष कहा है। मानव जैसी कल्पना करता है, जैसे उसके विचार होते हैं, उसी के अनुसार अन्तरिक्ष से वही परमाणु आने प्रारम्भ हो जाते हैं।

जैसे-(१) एक आत्मविश्वासी मानव 'अहिंसा परमोधर्म' को मानता है तो उसमें इतना ओज और तेज आ जाता है कि वायुमण्डल में 'अहिंसा परमोधर्म' के विचरण करने वाले परमाणु उसके निकट आने लगते हैं। वह मानव जहां अपने वाक्य उच्चारण करता है, वहां का वायुमण्डल शुद्ध हो जाता है।

(२) यदि किसी गृहस्थी घर में कलह रहने लगती है तो वायुमण्डल से कलह के परमाणु वहां आने लगते हैं। वह गृह कलह का केन्द्र बन जाता है। उसको नरक की संज्ञा दी जा सकती है। अतः सुखी गृहस्थी बनने के लिए यह आवश्यक है कि उस गृह का वायुमण्डल सात्विक हो।

(३) यदि कोई मानव लालच के वशीभूत होकर कृपण हो जाता है तो अन्तरिक्ष में कृपणता के परमाणु उसके समीप आने लगते हैं। उसकी कृपणता बढ़ती जाती है।

(४) यदि कोई प्राणी कामी बनना चाहता है तो वायुमण्डल से कामी परमाणु उसमें आने आरम्भ हो जाते हैं। कामना ही कामना उसे प्रतीत होने लगती है।

(५) यदि कोई मानव अनाचार से ऐश्वर्य (धन) वाला बन जाता है, तो उसे आत्मिक शान्ति नहीं मिलती। उसके अनाचार उसके अन्तःकरण को छूते हैं, उसको दुःखत करते हैं, वह व्याकुल हो जाता है और उसका अन्तःकरण भ्रष्ट हो जाता है।

हमारे भीतर में ७२ करोड़ ७२ लाख १० हजार दो सौ दो नाड़ियां हैं। किसी भी नाड़ी में मानव द्वारा प्राप्त ज्ञान का भण्डार संचित नहीं होता। विचार करने से पता लगता है कि इस शरीर में ज्ञान का भण्डार कहीं नहीं है, बल्कि इसमें ज्ञान प्राप्त करने के यन्त्र लगे हैं, जिनका सम्बन्ध अन्तरिक्ष से होता है। वाक्यों को श्रोत (कान) अन्तरिक्ष से लेते हैं। उनको विचारधाराओं में ले जाते हैं।

जैसा यह ब्रह्माण्ड है, वैसा ही यह पिण्ड (मानव शरीर) कहलाया गया है। यह अन्तरिक्ष हृदय में भी है। शरीर ब्रह्माण्ड का सूक्ष्म रूप है। अन्तरिक्ष में नाना परमाणु भ्रमण कर रहे हैं। हमारे शरीर में भी अन्तरिक्ष (आकाश) होता है। यदि इसमें अन्तरिक्ष न होता तो मानव कोई वाक्य उच्चारण ही नहीं कर सकता।

शब्द अनादि नहीं है। अनादि तो आत्मा, परमात्मा और प्रकृति ही है। शब्द तो संक्षिप्त होकर लुप्त हो जाता है। अन्तरिक्ष के साथ ही यह भी शान्त हो जाता है।

- ☞ **जो समाज में अच्छाइयों को उत्पन्न नहीं करता, वह समाज का ऋणी है।**
- ☞ **जो राजा ऊँचे विचारों को स्वीकार नहीं करता, वह राजा राष्ट्र का ऋणी है।**
- ☞ **देवता वह मनुष्य कहलाता है जो दूसरे जीवां की रक्षा करता है।**

- ☞ जब मानव की संकल्प शक्ति ऊँची बन जाती है तो उससे मानव के रोग भी शान्त हो जाते हैं।
- ☞ प्रजा के वैभव को संग्रह करने वाले पामर कहलाते हैं।
- ☞ रूढ़ि का पनपना ही राष्ट्र में रक्त का बहना है।
- ☞ आत्मा जब शरीर में आता है तो नग्न आता है और जब जाता है तो नग्न जाता है।
- ☞ वेद ईश्वरीय ज्ञान है।

११मानव शरीर

मानव शरीर एक अद्भुत यन्त्रालय है। इसमें अनेक प्रकार के यन्त्र लगे हैं। मानव को अपने जीवन का मन्थन करना चाहिए और इसके महत्त्व को जानना चाहिए। मानव शरीर को विविध नामों से पुकारा जाता है। जैसे विष्णुपुरी, ब्रह्मपुरी, ऋषिपुरी व इन्द्रपुरी आदि-आदि।

विष्णुपुरी

जब मानव ब्रह्मवेत्ता बन जाता है और उसमें दूसरों के प्रति दया, नम्रता और ओज उत्पन्न हो जाता है, तो वह मानव विष्णु पद को प्राप्त हो जाता है। वह तेजवान और ब्रह्मचारी बन करके विष्णु लोकों में पहुँच जाता है। ऐसे शरीर को 'विष्णुपुरी' कहा जाता है।

ब्रह्मपुरी

ब्रह्मा उसे कहते हैं जो चारों वेदों का महान पण्डित होता है। यज्ञशाला में ब्रह्मा का पद ग्रहण करता है। यज्ञ दो प्रकार के होते हैं।

(१) आन्तरिक यज्ञ

आन्तरिक यज्ञ में परमाणु 'ब्रह्मा' है, आत्मा 'यजमान' है। मन और बुद्धि इसके 'होता' हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ दस पात्र हैं। मानव शरीर यज्ञवेदी है। इसमें आन्तरिक प्रवृत्तियों की आहुति दी जाती है। इसमें सुविचारों की सुगन्धि और कुविचारों की दुर्गन्धि उत्पन्न होती रहती है। विषयों की सामग्री बनाकर हृदय रूपी यज्ञशाला में आहुति दी जाती है। ऐसा मानव ब्रह्मा कहलाता है तथा उसका शरीर 'ब्रह्मपुरी' कहा जाता है।

(२) बाह्य या भौतिक यज्ञ

इसमें एक ब्रह्मा, एक अध्वर्यु, एक उद्गाता और यज्ञमान होता है। नाना प्रकार की वनस्पतियां की सामग्री बनाकर यज्ञशाला में 'स्वाहा' के साथ आहुति देते हैं। इससे जगत् को सुगन्धि प्राप्त होती है तथा परमाणु सुन्दर बनते हैं।

ऋषिपुरी

मानव शरीर एक यज्ञवेदी है, जिसमें संसार का विज्ञान ओत-प्रोत है। जो मानव लोक-लोकान्तरां को जानना चाहता है अपने आत्मा को ब्रह्मरन्ध्र में ले जाए। ब्रह्मरन्ध्र में एक हजार नाड़ियाँ होती हैं। प्रत्येक से ९४-९४ नाड़ियों का विकास होता है। इन नाड़ियों का सम्बन्ध लोक-लोकान्तरां से होता है। उस समय योगी की आत्मा के लिए कोई ऐसा लोक नहीं, जिसका दिग्दर्शन न हो सके। इस प्रकार यह ऋषिपुरी है। ऋषि मानव शरीर में अनुसन्धान करते हैं। कहीं योग का, कहीं आयुर्वेद का और कहीं विज्ञान के परमाणुवाद का अनुसन्धान करते हैं। अनुसन्धान करते-करते मृत्यु से पार होने का प्रयास करते हैं। ऋषियों का यही कर्त्तव्य होता है कि योगाभ्यास करते हुए अपने अन्तरात्मा को उज्ज्वल बना लेते हैं। इन्द्रियों के विषय की आहुति देकर अपने ऋषित्व को प्राप्त हो जाते हैं।

इन्द्रपुरी

इन्द्र उसे कहते हैं जो इन्द्रियों का स्वामी तथा देवताओं का अधिराज हो। जो दोनों प्रकार के देवताओं जड़ तथा चैतन्य दोनों को जान लेता है। इस प्रकार के आत्मा का निवास यह शरीर 'इन्द्रपुरी' कहलाता है। इस मानव शरीर को भिन्न-भिन्न पदवी प्राप्त हो सकती है, इसलिए मानव योनि को ही सर्वश्रेष्ठ योनि माना गया है।

नाना प्रकार के रोगों से रोगी हो जाना मानव के लिए सुन्दर नहीं है। यदि हम प्रकृति तथा वातावरण के आधार पर अपने जीवन का निर्माण करने वाले बनेंगे, तो ज्ञान तथा विज्ञान पवित्र बन जाएगा।

मानव का आहार

(शुद्ध सात्विक और पवित्र)

मानव शरीर एक प्रकार का यज्ञ है। इसमें अशुद्ध भोजन रूपी अशुद्ध आहुतियाँ दी जाएंगी, तो शरीर रूपी यज्ञ नष्ट हो जायेगा। परमात्मा ने इस शरीर को विधान से बनाया है। इसमें वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष सब एक साथ विधान से कार्य कर रहे हैं। इनमें से एक का भी विधान समाप्त हो जाने से यह शरीर नष्ट हो जाता है।

परमात्मा ने सभी जीवात्माओं को उनके कर्मानुसार योनियाँ दी हैं। पशु-पक्षी और कीट-पतंग भोग योनि हैं और परमात्मा ने उन्हें कारागार में डाला है। मानव योनि कर्म-योनि और भोग-योनि दोनों मानी गई है। जो मानव परमात्मा के कारागार वाले जीवों की हिंसा करके अपने जीवन की पूर्ति करते हैं, एक समय वह आयेगा जब वे परमात्मा के कारागार में अवश्य जायेंगे। परमात्मा ने मानव के भक्षण करने के लिए बहुत-सी सोमलताएं, नाना वनस्पति तथा वृक्षों पर लगने वाले फल दिये हैं। इन्हें खाकर मानव में सात्विकता और महत्ता आती है। बुद्धि तीव्र हो जाती है।

यदि मानव स्वाभाविक आहार को त्यागकर शेर के समान हिंसामय आहार करता है तो उसका जीवन तुच्छ, निकृष्ट और हीनत्तम बन जाएगा। यह परमात्मा के नियम के विपरीत है। इससे आत्मा का हनन होता है।

जब हम शुद्ध आहार करते हैं तो इससे हमारी बुद्धि निर्मल और स्वच्छ हो जाती है। अन्तःकरण पवित्र हो जाता है और वाणी यथार्थ उच्चारण करती है। वाणी सिद्ध होने पर बौद्धिक पाप नहीं होता। बौद्धिक पाप नहीं होने से आत्मा हर प्रकार से उत्तम बनता चला जाता है। मानव पशु के समान आहार करने से पशु बन जाता है।

वास्तव में मानव का आहार शुद्ध व सात्विक होना चाहिए। तामसिक या राजसिक नहीं। तामसिक या राजसिक आहार करने से मानव की बुद्धि तामसिक या राजसिक हो जाती है। उसका जीवन नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। संसार से समाप्त होने के पश्चात् उसे कई जन्मों में भी बुद्धि प्राप्त नहीं होती।

दूसरों के गर्भाशय (अण्डे) का आहार करने वाले कर्मानुसार कभी न कभी गर्भाशय में ही नष्ट होते हैं। जिस गर्भ को खाकर मानव अपनी रसना का आनन्द मनाता है, भविष्य में वह भी उसे अपनी रसना का भोग बना लेगा।

आधुनिक युग में मानव अपना आहार त्यागकर आत्मा वाले अर्थात् चेतना वाले जीव-जन्तुओं का आहार करता है तो वह हिंसक बन जाता है। ऐसा मानव इतना तुच्छ बन जाता है कि उसका जीवन अगले जन्मां में वहाँ चला जायेगा जहाँ प्रकाश का अंकुर भी प्राप्त नहीं होगा।

आत्मा के दो लक्षण-ज्ञान और प्रयत्न

ये दो लक्षण सदा ही आत्मा के साथ रहते हैं।

वृक्ष तथा वनस्पतियां में इन गुणों का अभाव होने के कारण उनमें आत्मा नहीं माना जा सकता। ये मानव के भोज्य पदार्थों (आहार) के रूप में परमात्मा ने दिये हैं। परमात्मा के ज्ञान वेद का भी यही आदेश है। इनके आहार में कोई संकोच नहीं है।

यदि मानव कारागार वाले पशु-पक्षी, कीट-पतंग का आहार करता है तो यह उसकी तुच्छता है, हीनता है, निर्लज्जता है तथा पाप है। वास्तव में मानव का जीवन उसी काल में महत्वदायक हो सकता है जब उसका आहार तथा रसना शुद्ध होवे।

अतः दूसरे जीवों का भक्षण न करो। यदि जीवन चाहते हो, राष्ट्र की एकता और सदाचार चाहते हो, तो प्राणियों की रक्षा करो। यह शरीर दूसरों की रक्षा के लिए मिला है, अतः बल से, वाणी से और हस्त से रक्षा करो। ये भुजाएँ रक्षा के लिए हैं, वध के लिए नहीं।

जो मानव दूसरों को नष्ट करने का विचार बनाता है, वह स्वयं नष्ट हो जाता है।

१२समय और काल में भेद

समय सादि और सान्त होता है परन्तु काल अनादि और अनन्त होता है। समय की उत्पत्ति सूर्य की उत्पत्ति से प्रारम्भ होती है। वर्ष, महीने, दिन, भूत, भविष्य तथा वर्तमान आदि भी समय के विभाग ही हैं। काल इससे पहले भी रहता है। ब्रह्माण्ड जो प्रकृति का दूसरा और विकृत रूप है तीन काल के अन्दर समझा जाता है, परन्तु मूल प्रकृति ब्रह्माण्ड से बाहर भी है।

सृष्टि-अवधि

परमेश्वर ने यह सृष्टि और काल चक्र मनुष्य के उपकार के लिए बनाए हैं। एक सृष्टि का काल ४,३२,००,००,००० वर्ष अर्थात् चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष का निश्चित है। इसमें १४ मन्वन्तर होते हैं। एक मन्वन्तर में ७१ चतुर्युगी होती हैं। ६ चतुर्युगी सृष्टि काल की होती हैं। इतना ही प्रलय काल होता है। यह ब्राह्म-दिन और ब्राह्म-रात्रि के नाम से प्रसिद्ध है।

एक चतुर्युगी ४३ लाख २० हजार वर्ष की होती है। एक ब्राह्म-दिन और एक ब्राह्म-रात्रि २००० चतुर्युगी की होते हैं। यह ब्रह्म का एक अहोरात्र भी कहा जाता है।

३६० अहोरात्रों का एक ब्रह्म वर्ष होता है। ऐसे १०० वर्षों की ब्रह्म की शतायु या महाकल्प होता है। आत्मा ब्रह्म बनकर शतायु होने तक मोक्ष में रहता है। ३६०×१०० = ३६००० बार सृष्टि की रचना तथा प्रलयकाल को महाकल्प-काल कहा जाता है।

इस प्रकार आत्मा मोक्ष में ३१ नील १० खरब ४० अरब वर्ष तक रहती है। आत्मा ब्रह्म बन सकती है, परन्तु परब्रह्म कभी नहीं।

इतने वर्षों पश्चात् आत्मा पुनः संसार में जन्म लेता है। मानव जीवन का उद्देश्य यह है कि वह परमानन्द पाता रहे।

इस संसार का सुख क्षणभंगुर है। उसकी तुलना में मोक्ष का सुख बहुत महान, विशाल और विस्तृत है। यही मोक्ष प्राप्ति का महत्व है।

जब आत्मा प्रभु की गोद में चला जाता है, तो उस समय उसको परमानन्द प्राप्त हो जाता है। उस आनन्द को आज तक कोई योगी लेखनीबद्ध नहीं कर सका है और न कर सकता है। उस समय वाणी और बुद्धि परमात्मा में लय हो जाती है। इसलिए इसका वर्णन कैसे करें? वह आनन्द तथा आत्माओं का विषय, बुद्धि व वाणी का विषय नहीं है, अनुभव का है।

युगों का वर्गीकरण

(१) सतयुग

१७ लाख २८ हजार वर्ष

सतयुग में धर्म के चारों चरण रहते हैं-सत्य, तप, दया और दान ये चरण कहलाते हैं। किसी मानव का किसी से राग-द्वेष नहीं होता। इस युग में ऋषि-मुनियों की ऊँची प्रणाली होती है। जहाँ भी व्यक्ति एकत्रित होते थे या माताएँ एकत्रित होतीं, वहाँ भगवान की चर्चा तथा हृदय में देवता बनने की आकांक्षा रहती थी। अपने-अपने आत्मिक बल तथा राष्ट्र को ऊँचा बनाने की चर्चा होती थी। जहाँ दैत्य न रहते हों, जहाँ देवताओं का वास हो और उनकी पूजा होती हो, उसे ही सतयुग कहते हैं। उस युग में सभी मानव तीनों ऋणों से उऋण होने का प्रयास करते थे। तीनों ऋणों के नाम हैं-ऋषि ऋण, देव ऋण और मातृ-ऋण। सभी के 'शिखा' और 'यज्ञोपवीत' दो मुख्य आभूषण थे। जो इन ऋणों से उऋण होने का संकल्प करता है, वही आर्य कहलाता है।

(२) त्रेता

१२ लाख ९६ हजार वर्ष

जिस काल में धर्म का एक चरण समाप्त हो जाता है उसको त्रेता कहते हैं। इसमें सूक्ष्म अग्नि प्रचण्ड होने लगती है।

(३) द्वापर

८ लाख ६४ हजार वर्ष

इस युग में धर्म के दो चरण शेष रह जाते हैं। इसमें देवता तथा दैत्यों की संख्या समान हो जाती है। धर्म की मर्यादा वृद्ध होने लगती है।

(४) कलयुग

४ लाख ३२ हजार वर्ष

मानव की वृद्धावस्था के समान ही यह कलयुग है। इसमें मर्यादा का केवल एक ही चरण रह जाता है। अधर्म की मर्यादा अधिक होती है। इसमें कलों से ही सब कार्य होने लगते हैं। वास्तव में जिस काल में अज्ञान अधिक होता है, उसे कलयुग कहते हैं।

महर्षि नारद ने कलयुग की व्याख्या करते हुए कहा था कि जिस प्रकार बाल्यकाल, युवा, मध्य तथा वृद्धावस्था होती है, उसी प्रकार कलयुग की स्थिति ठीक वृद्धावस्था की है। जब शक्ति नष्ट हो जाती है तथा अज्ञानता आ जाती है। इन युगों को ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और सन्यासाश्रम में भी विभाजित किया जा सकता है।

हर काल में हर प्रकार के मनुष्य रहते हैं। यह अवश्य है किसी काल में धर्मात्मा अधिक और किसी में दैत्य। ये चारों युग परिक्रमा करते रहते हैं। इनकी अवधि निश्चित है। परमात्मा ने अवधि बनाई कि इतने समय तक दिन रहेगा तथा इतने समय तक रात्रि। जिस समय संसार को उत्पन्न किया जाता है, वह दिवस है। संसार की रचना गणित विद्या के अनुसार नियमानुसार तथा विलक्षण है।

इस संसार में सदैव परिवर्तन होता रहता है। जो सूर्य में ताप करोड़ों वर्ष पूर्व था, वह अब नहीं और जो अब है, वह करोड़ों वर्ष पश्चात् न रहेगा। एक समय ऐसा आयेगा जब इसकी ज्योति समाप्त हो जायेगी। वायु में प्राणसत्ता तथा पृथ्वी में गन्ध नहीं रहेगी, उसको प्रलय या रात्रि कहा जाता है। संसार में दिवस और रात्रि अथवा सृष्टि और प्रलय की अवधि निश्चित है। प्रलय में जगत् परमात्मा के गर्भ में चला जाता है। उस समय जड़ प्रकृति शून्य होकर अन्तरिक्ष में रमण कर जाती है।

परमात्मा के नियम के अनुसार यह संसार बनता है। सृष्टि की उत्पत्ति होती है और आत्मा जैसे कर्म करने की इच्छा करता है, वैसे ही जन्म लेता रहता है। शुभ-अशुभ कर्मों के फल भोगता रहता है।

जैसे माता अपने पुत्र को गर्भ में धारण करती है, वैसे ही प्रलय के समय माताओं की माता दुर्गा परमात्मा सारे प्रकृति तथा सारे जीवों को अपने गर्भ में धारण करके प्रकृति को आश्रय तथा विश्राम देकर शिथिलता तथा निर्बलता का हरण कर लेती है और उसमें कार्य करने की शक्ति को फिर से स्थापित कर देती है।

१३ आचार्य द्वारा शिष्यों की वर्ण नियुक्ति

बुद्धिमानों के द्वारा विद्यालयों में आचार्य चुना जाना चाहिए। जो मनोविज्ञान और आयुर्वेद के विशेषज्ञ हों, ऐसे पंडितों को आचार्य पद पर मनोनीत करना चाहिए। आयुर्वेद और मनोविज्ञान के जाने बिना ब्रह्मचारियों के गुरू बनने का अधिकार नहीं होता। आचार्य ही जानता है कि ब्रह्मचारी की किस प्रकार की प्रवृत्ति है और मस्तिष्क में कैसा निर्माण है? अतः आचार्य को तीन दिवस तीन रात्रि विद्यार्थी को अपने गर्भ में धारण करना चाहिए। इसका अभिप्राय माता का गर्भ नहीं अपितु गुरूकुल ही आचार्य का गर्भाशय कहलाता है।

आचार्य विद्यार्थी के विचारों और क्रियाओं से यह जान लेता है कि कौन से गुण वाला ब्रह्मचारी है? कौन-सा वर्ण या उपाधि इसे प्रदान की जाए। इसलिए ऋषि-मुनियों ने कहा है कि शिक्षालयों में ऊँचा ब्राह्मण हो और आचार्य गुणी हो। जब गुरु ऊँचा होगा तो राष्ट्र और समाज का कल्याण हो सकता है।

जातीयता जिस काल में आती है, वह काल रक्त भरी क्रान्ति का होता है। उस काल में शान्ति की स्थापना नहीं हो सकती। वर्ण-व्यवस्था गुण, कर्म व स्वभाव के आधार पर होती है। चारों वर्ण वाले अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। जहाँ कर्त्तव्य होता है, वहाँ राष्ट्र में रक्त भरी क्रान्ति नहीं होती।

प्राचीन काल में आचार्य लोग सुचरित्र, सुविचारक तथा विवेकी होते थे।

वर्ण व्यवस्था

ब्राह्मण

जिस प्रकार हमारे शरीर में कण्ठ के ऊपर का भाग ब्राह्मण है जिसमें चक्षु, श्रोत्र, रसना, घ्राण आदि सभी हैं, उसी प्रकार समाज में ब्राह्मण का स्थान है। रसना की भांति त्याग, श्रोत्र की भांति प्रत्येक वाक्य को ग्रहण करना, नेत्रों की भांति देखना आदि गुण क्रियात्मक रूप में जीवन में होने चाहिए। आपत्ति काल में भी तपस्या करने का गुण होना चाहिए।

संसार में परमात्मा सबसे बड़ा ब्राह्मण है। सूर्य को भी ब्राह्मण कहते हैं। सूर्य तीनों लोकों को तपायमान कर देता है। तीनों लोक उसके तेज व प्रताप से प्रकाशित हो जाते हैं। इस प्रकार ब्राह्मण उसी को कहते हैं जो प्रकाश देता हो।

परमात्मा हमारी आत्मा में बैठा हमें प्रकाशित कर रहा है। उसी को ब्राह्मणों का ब्राह्मण कहा जाता है। प्रकाशमान को ही ब्राह्मण कहते हैं।

ज्ञानी मानव को ब्राह्मण कहते हैं। प्रत्येक मानव को ज्ञान देकर अमृततुल्य बना देने में सहायता करने वाले को ब्राह्मण कहते हैं। ऐसे ही मानव को ब्राह्मण की उपाधि दी जाती है।

हमारे शरीरों में मल, विक्षेप तथा आवरण हैं। इन तीनों को अपनी विद्या से समाप्त करने वाले को ही हमारे आचार्यों ने ब्राह्मण माना है। जो राष्ट्र को ऊँचा बनाने वाला हो, एक साधारण व्यक्ति का भी उत्थान करने वाला हो और जो वेदों के ज्ञान का भण्डार हो, उसी को ब्राह्मण पुकारा जाता है। जो सब गुणों वाला बन जाता है, उसी को तेजस्वी ब्राह्मण कहा जाता है।

ब्राह्मण उसे कहते हैं जो ब्रह्म में चरता हो और सत्यवादी हो। सत्य में ब्रह्म ओत-प्रोत रहता है। ऋत् और सत् दो ब्रह्म के अंग कहलाये जाते हैं।

याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि ब्राह्मण उसे कहते हैं जो सत्य का पथिक हो। सत्य का पथिक वह होता है जिसे न मान होता है न अपमान होता है। हमेशा सत्य की वार्त्ता स्वीकारता है। जब जाबाला पुत्र सत्यकाम महर्षि गौतम आश्रम में प्रविष्ट हुए, उस समय ऋषि ने कहा कि तुम्हारा गोत्र क्या है? जब सत्यकाम ने यथार्थ वाक्य कहा

तो ऋषि ने कहा कि सत्यकाम! तुम तो ब्राह्मण हो।

जिसने वेदों की विद्या को अच्छी प्रकार निगला हो, निगलकर दूसरों को विद्या देने वाला हो, स्वाध्यायशील हो, तपस्वी हो और अपनी विद्या में सब कुछ भूला हो, ऐसे गुणों वाले को ब्राह्मण की उपाधि से विभूषित किया जाना चाहिए।

क्षत्रिय

शरीर में जैसा भुजाओं का स्थान है वैसा ही स्थान समाज में क्षत्रियों का होना चाहिये। उन्हें बलशाली तथा समाज की रक्षा करने में समर्थ होना चाहिए।

वैश्य

शरीर में जो स्थान उदर का है, वही समाज में वैश्य का स्थान है। विभिन्न पदार्थों को प्राप्त करके, उनसे श्रेष्ठ रस निकालकर, शरीर के प्रत्येक अंग को आवश्यकतानुसार पहुँचाना उसका धर्म है। समाज में सभी की धन से सहायता करना वैश्यों का कर्त्तव्य होता है।

शूद्र

शूद्र का स्थान पैरों के समान है। जो तीनों कर्मों के योग्य न हो, उसे शूद्र कहते हैं। तीनों वर्णों की सेवा करना उसका धर्म है।

सभी वर्णों के मानव अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए एक-दूसरे के सहायक होने चाहिए।

- ☞ **यज्ञ का रस स्वाहा है।**
- ☞ **जब आहार पवित्र बनता है तो व्यवहार पवित्र बनता है।**
- ☞ **जहाँ प्रीति नहीं होती, वहाँ धर्म नहीं होता।**
- ☞ **द्रव्यपति वह होता है जिसके द्वारा मानवीय जीवन और दर्शन होता है।**
- ☞ **आत्मा के प्रकाश से ही हम संसार के प्रकाश को दृष्टिपात करते हैं।**
- ☞ **जिस काल में बुद्धिमान अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहते हैं, उस काल का नाम राम-राज्य कहा जाता है।**
- ☞ **धर्म एक है, सम्प्रदाय अनेक।**
- ☞ **अन्तःकरण और वाणी में नम्रता हो, यही धर्म का सबसे बड़ा लक्षण है।**
- ☞ **सत्य को सत्य मानने या उसके उच्चारण करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।**
- ☞ **अपनी प्रवृत्तियों पर संयम करने को विवेक कहते हैं।**

१४ नाना उपाधियाँ

हमारे यहाँ नाना प्रकार की उपाधियाँ परम्परा से चली आई हैं जैसे ब्रह्मा, विष्णु, वशिष्ठ, भारद्वाज, शृंगी और विश्वामित्र आदि। ये उपाधियाँ बुद्धिमानों के द्वारा विद्वानों का चुनाव करके दी जाती थी। उपाधि का अभिप्राय है कि चुनते समय बुद्धिमान उसकी परीक्षा लेते थे। जो ऋत और सत् को जानने वाला हो और क्रोध न आता हो, उसको ब्रह्मवेत्ता कहकर पुकारा जाता था। यह सर्वत्र बुद्धिमानों को मान्य होता था। उपाधि प्राप्त विद्वान अपने-अपने विषय में विशेषज्ञ होते थे जैसे आजकल डाक्टर दिल, आँख, नाक, कान व अन्य अंगों के विशेषज्ञ होते हैं। उपाधियों के द्वारा राष्ट्र और समाज ऊँचा बनता है। समाज के कल्याण के लिए उपाधियाँ प्रदान की जाती थी। अधिकारी को ही उपाधि दी जाती थी। उन महापुरुषों को उपाधियाँ प्रदान की जाती थी जिनका जीवन परिमार्जित हो और अपने विषय के पूर्ण कर्मकाण्डी हों।

जब समाज में अधिकारी तथा अनाधिकारी का विचार नहीं रहता तथा उनका निर्वाचन बुद्धिमानों द्वारा नहीं होता, तो उसका परिणाम यह होता है कि रक्त भरे विचार मानव के मस्तिष्क में आ जाते हैं। स्वार्थ की मात्रा प्रबल हो जाती है। स्वार्थ उस काल में आता है जब अनाधिकारी को पदवी या उपाधि प्रदान कर दी जाती है। यदि राष्ट्र नेता या राष्ट्रपति का चुनाव विवेकी विद्वानों द्वारा नहीं होगा तो वह राष्ट्र के लिए हितकर नहीं होता। यदि विद्वानों द्वारा चुनाव होता है तो राष्ट्र के लिए उन्नति का कारण बनता है। उस समय समाज में शान्ति होती है और विद्या का प्रसार होता है। राष्ट्र में मानवता आ जाती है और समाज ऊँचा बन जाता है।

प्राचीन काल में ऋषि-मुनियों तथा विद्वानों को भी विशेष उपाधियों से अलंकृत किया जाता था जैसे शिव, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, वशिष्ठ, भारद्वाज, गणेश, नारद, शृंगी आदि-आदि।

शृंगी

जो ऋषि वृष्टि यज्ञ एवम् पुत्रेष्टि यज्ञ कराने में निपुण होता था उसे शृंगी ऋषि की उपाधि से अलंकृत अथवा विभूषित किया जाता था। परम् पूज्यनीय ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी को अपने अनेक जन्मों में इस उपाधि

से विभूषित किया गया। राजा दशरथ के यहाँ पुत्रेष्टि यज्ञ इन्होंने ही करवाया था।

वशिष्ठ

जो विद्वान कर्मकाण्ड में पारंगत हो और उसका जीवन परिमार्जित हो, ऐसे ब्रह्मवेत्ता को वशिष्ठ की उपाधि प्रदान की जाती थी। महाराजा दशरथ के यहाँ महर्षि वशिष्ठ राज्य पुरोहित थे। पुरोहित वही होता है जो अपने जीवन को संयम में बनाकर, ब्रह्म को अपने में समाहित कर लेता है।

नारद

जो विद्वान अपनी इच्छाओं को त्याग देता है। अपनी आभा को लोक-लोकान्तरां में ले जाने वाला हो जाता है। मन की गति ज्ञान के सहित प्रबल हो जाये। जो ब्रह्मवेत्ता ध्यानावस्थित होकर संसार का दिग्दर्शन करने वाला हो, उसे नारद की उपाधि प्रदान की जाती थी। जो हृदय में किसी प्रकार का कपट न रहने दे, उसको भी नारद कहा जाता है।

इन्द्र

जो राजा अपने शासन में १०१ अश्वमेध यज्ञ करा लेता है। अश्वमेध का अभिप्राय यह है जो संसार को अपनी भावनाओं से, अपनी विद्या से और बल से विजय कर लेता है, उसे इन्द्र की उपाधि प्रदान की जाती थी।

ऐसा राज्य एक नियमावली बनाकर, सभी राष्ट्रों को अपने नियन्त्रण में लेने वाला हो। संसार में उसका कोई विरोध नहीं कर सकता हो अथवा जिसका कोई विरोधी न हो।

बाल्मीकि

जो बाल्यकाल में कुकर्म करने वाला हो और आगे तपस्या करके ऋषि बन जाए, उसी का नाम बाल्मीकि कहलाता है। रत्नाकर ने ९४ वर्ष तप किया। दूसरां को कष्ट देकर द्रव्य प्राप्त करने वाला, अतिथियां की सेवा करने लगा। उसकी वाणी में कटुता के स्थान पर महत्ता आ गई। यह तप की महिमा, गायत्री माँ की करूणा तथा प्रभु की महत्ता है।

१५ विशेष तिथियों का महत्त्व

नवरात्र तिथियों की व्याख्या

नौ रात्रियों का वैदिक साहित्य में सुन्दर वर्णन है। इसका तात्पर्य यह है कि हमारे नव-द्वारों में जो अन्धकार छा जाता है, उसे अनुष्ठान करते हुए दूर करें। एक-एक रात्रि में एक-एक इन्द्रिय के द्वार पर विचार करना चाहिए। रात्रि का अर्थ है, अन्धकार। अन्धकार से प्रकाश में लाने को ही जागरण कहा जाता है। जागरण का अभिप्राय यह है कि मानव जागरूक रहे व अच्छाइयों के प्रति सजग रहे। ऐसे मानव के लिए रात्रि कोई वस्तु नहीं होती। रात्रि तो उनके लिए होती है, जो जागरूक नहीं रहते। अतः जो आत्मा से जागरूक हो जाते हैं, वे प्रभु के राष्ट्र में चले जाते हैं और वे नव-रात्र में नहीं आते।

एक वर्ष में यह अनुष्ठान दो बार होता है। एक चैत्र मास में तथा दूसरा क्वार (अश्विन) मास में। इन दोनों का माहात्म्य एक ही है। प्रतिपदा से लेकर अष्टमी तक प्रकृति की गति इन दोनों में शान्त रहती है। अतः इसको गति देने के लिए और वायुमण्डल का शोधन करने के लिए, प्रत्येक मानव को यज्ञमयी होना चाहिए। यज्ञ-ज्योति शान्त नहीं होनी चाहिए। इसका अनुष्ठान व्रती बनकर (संकल्पमय) संकल्प के द्वारा यज्ञ करना चाहिए। ऐसा करने से प्रकृति माँ वसुन्धरा अपने प्यारे पुत्रों को इच्छानुसार फल दिया करती है। ऊँचे कार्य का ऊँचा परिश्रम या फल होता है।

जब प्रत्येक मानव और देवकन्या याज्ञिक बनकर अनुष्ठान करने लगता है तो प्रवृत्तियां ही मानव और वायुमण्डल का निर्माण कर देती हैं। वायुमण्डल जितना शोधित होता है, उतनी ही कृषक की भूमि पवित्र होती है। इस प्रकार पृथ्वी के गर्भ में नाना प्रकार की औषधियां शोधित हो जाती हैं और पवित्र बन जाती हैं।

इन दिनों मानवों का संयमी, संकल्पमयी और सूक्ष्म अन्न ग्रहण करने वाला होना चाहिए। माता के गर्भस्थल में रहने के जो नव मास हैं, वे रात्रि के ही रूप माने जाते हैं। वहाँ पर अन्धकार रहता है, वहां रुद्र रमण करता है तथा मल-मूत्रों की मलिनता रहती है। उसमें आत्मा का वास होकर शरीर का निर्माण होता है। जो मानव नौ-द्वारों से जागरूक रहकर, उनमें अशुद्धता नहीं आने देता, वह मानव नव-मास के अन्धकार में नहीं जाता। गर्भ में मानव का महाकष्टमय जीवन होता है। अन्धकार को नष्ट करने के लिए ऋषि-मुनियां ने अपना अनुष्ठान किया और गृहस्थियों को जीवन में अनुष्ठान करने का उपदेश दिया।

एकादशी व्रत (शिवरात्रि)

एकादशी का अभिप्राय है-पाँच ज्ञानेन्द्रियां, पाँच कर्मेन्द्रियां और उनके साथ मन। इनको एकादशी अथवा एकाग्रता कहते हैं। हम मन-वचन-कर्म से अपनी इन्द्रियों को संयममय बनाएं। मन इन्द्रियों का नियन्त्रण करने वाला प्रतीक माना गया है। बिना मन के इन्द्रियों का कोई अस्तित्व नहीं होता। जैसे नेत्रों की ज्योति में मन विराजमान है, इसीलिए उनके समीप चंचलता आती रहती है। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों के साथ है। यह मन अपनी प्रतिभा, गति, प्रभाव, चेतना तथा विज्ञानवाद आदि के अस्तित्व को, इन्द्रियों को देकर उन्हें क्रियाशील करता रहता है। मानव जब अपना संकल्प बना लेता है कि जो मैंने कहा है, उसे मुझे करना है। इस प्रकार का संयम करने पर, उसकी इन्द्रियों में संयम करने की शक्ति प्रबल हो जाती है। इन्द्रियों पर संयम करना उसका लक्ष्य हो जाता है। इस प्रकार के लक्ष्यवाद से ही मानव समाज उज्ज्वल तथा ऊँचा बनता है।

एकादशी तिथि को ही शिवरात्रि व्रत होता है। इसी दिन महाराजा शिव ने राष्ट्र को अपनाया था। उसने राष्ट्र में एकादशी व्रत का पालन कराया। यह कोई नवीन तो नहीं था, क्योंकि यह एकादशी व्रत परम्पराओं से ही चला आ रहा था। इस दिन माता पार्वती तथा महाराजा शिव दोनों जागरूक रहते थे। इसी प्रकार उन्होंने अपनी साधना

को परिपक्व किया था।

इस त्योहार में जागरूक रहना अनिवार्य है। इसका कारण है कि जब एकादशी आती है तो सूर्य की किरणों का सम्बन्ध अधिक होने के नाते ही कृत्तिका तथा वृद्धभानु दोनों ही नक्षत्रों की प्रतिभा रहती है। मध्य-रात्रि में इनकी प्रतिभा समाप्त हो जाती है। गर्भवती स्त्रियों को तो अनिवार्य रूप से जागरूक रहना चाहिए।

इस दिन इन्द्रियों को संयम में लाना, संकल्प करना व अपनी विचारधारा का शोधन करना चाहिए। इस रात्रि में प्रकाश तथा अन्धकार दोनों ही समान होते हैं।

व्रत नाम संकल्प का, अच्छाइयों का तथा दुर्व्यवहारों को त्यागने का है। केवल अन्न को त्यागना और क्षुधा से पीड़ित रहना ही व्रत नहीं है। यह तो उदर की सफाई के लिए है। व्रत तो संकल्पों में रहता है। मस्तिष्कों, मन तथा इन्द्रियों में विराजमान रहता है। उसी संकल्प के आधार पर जीवन महत्ता को प्राप्त होता है। हमारी इन्द्रियों में एक महान संकल्प की पवित्र धारा ओत-प्रोत हो जाती है।

पूर्णिमा व्रत

पूर्णिमा व्रत का अर्थ है कि जिस व्रत का धारण करो, उसे पूर्णता से करो। जो भी नियम बनाओ, वे ऐसे पूर्ण हों जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा पूर्ण कलाओं से युक्त होता है। किसी भी कार्य को अधूरा न छोड़कर, उस महान व्रत को धारण करें, तभी हमारा व्रत सफल तथा वास्तविक फलदायक हो सकता है।

केवल अन्न का त्याग, क्षुधा से पीड़ित होना, उपवास करना आदि से विशेष लाभ नहीं होता। जो मानव व्रत धारण करके उसको सम्पूर्ण रूप से पूरा नहीं करता, उसका जीवन ऐसा होता है जैसे एक मानव की नैया भंवर में पड़ी हो।

मानव जीवन के दो पहलू हैं-शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष। शुक्लपक्ष वह है जिसमें मानव का उत्कर्ष होता है। कृष्णपक्ष वह है जिसमें अवनति होती है। दृढ़तापूर्वक आचरण और उच्च कर्त्तव्य-पालन से मानव सूर्य की भांति सब जगत् को अपने प्रकाश से आलोकित कर सकता है।

कृष्णपक्ष कठिनाइयों का काल होता है जिसका अन्त उज्ज्वल शुक्लपक्ष में होता है जो बहुत ही सुखदायक होता है। मानव को आपत्तिकाल में दृढ़ रहना चाहिए। अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए व शुभ कर्म के ऊपर दृढ़ निश्चय रखते हुए आगे बढ़ना चाहिए।

कृष्णपक्ष समाप्त होने पर मानव का जब शुक्लपक्ष आ जाए, उसके हृदय में प्रकाश हो जाए तथा विद्या और लक्ष्मी का प्रकाश गृह में आ जाए, उस समय अभिमान नहीं आना चाहिए। उस समय जो मानव माया-लिप्त होकर अन्धकार में आ जाता है, वह अपने को नष्ट कर लेता है। अन्त में उसकी सब सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। जो मर्यादा में बन्धकर दृढ़ रहता है, उसका जीवन बना रहता है और अन्त में मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

पाप और पुण्य हमारे अन्तःकरण में नियुक्त रहते हैं। जब पुण्य का उदय होता है तो मानव का विकास होता चला जाता है। यह शुक्लपक्ष होता है। जब पाप समक्ष आते हैं तो वह अधोगति में चला जाता है। यह कृष्णपक्ष होता है। मानव का कर्त्तव्य है कि वह समय अनुकूल कार्य करे। शुभ समय आये तो उसे भोगे। यदि समय अशुभ आ जाए तो वहाँ भी शुभ भोगने की चेष्टा होनी चाहिए। समय के अनुकूल अपने जीवन को ऊँचा बना लेना चाहिए, यही धर्म कहता है।

- ☞ **मानव में ज्ञान और विवेक का अभाव ही अन्धकार कहलाता है।**
- ☞ **अज्ञान को अन्धकार और ज्ञान को प्रकाश कहते हैं।**
- ☞ **मानव का जितना हृदय पवित्र होता है उतना ही मानव परमात्मा के निकट होता है।**

- ☞ जब द्रव्य का दुरुपयोग होता है तो यह द्रव्य उसी मानव के पुण्य को निगल जाता है।
- ☞ राष्ट्र का सबसे बड़ा भूषण सदाचार है।
- ☞ राष्ट्र का निर्माण धर्म की रक्षा करने के लिए किया जाता है।
- ☞ जब मानव का पुण्य उदय होता है तो मानव का विकास होता चला जाता है।
- ☞ जब मानव के समक्ष पाप आता है तो वह अधोगति में चला जाता है।
- ☞ जहाँ कर्त्तव्य में सूक्ष्मता होती है, वहाँ स्वार्थ होता है।

१६ सत्य वाणी की सिद्धि

अधिक वर्षों तक सत्य उच्चारण करने से वाणी में बल और प्राण शक्ति आ जाती है। वाणी में आग्नेय शक्ति उत्पन्न हो जाती है। ऐसा मनुष्य जो भी उच्चारण करता है, वही हो जाता है। दूसरे मानव के अन्तःकरण को दृष्टिपात करके यह भी जान लेता है कि उसके जीवन में कैसी-कैसी घटनाएं होने वाली हैं। हिंसक प्राणी भी चरण स्पर्श करते हैं। आत्म-सुधार के लिए सत्यता पर अडिग रहकर जीवन उच्च बन जाता है।

व्यक्ति के सुधार के लिए अवगुणों को दूर करना होता है। समाज-सुधार के लिए अवगुणों से युक्त मनुष्यों को दूर करना होता है। दुष्ट मनुष्यों को दूर करने का अर्थ ही समाज से बुराई दूर करना है। आत्म-सुधार में वाणी का मुख्य महत्व है।

वाणी

वाणी मीठी हो और बलशालिनी हो। मनुष्य मीठी और बलयुक्त वाणी से आपस में बातचीत करे। मनुष्यों के अन्दर जो झगड़े-फसाद होते हैं, उसका कारण कटु शब्दों का प्रयोग होता है। मनुष्य के मन में विष भरा रहता है, वह कटु शब्दों द्वारा बाहर आता है। सब जगह विषैला वायुमण्डल उत्पन्न करता है। यदि मनुष्य अपनी अन्तर्शुद्धि करेगा तो उससे कदापि कटु शब्दों का प्रयोग नहीं किया जायेगा।

मनुष्य ऐसे शब्दों का प्रयोग करे कि वे मीठे हों, शत्रुओं में मित्रता हो और उत्पन्न हुई मित्रता सुदृढ़ हो जाये। केवल शब्दों की मधुरता ही पर्याप्त नहीं है, प्रयुक्त शब्दों में बल भी चाहिए। उत्साह की वृद्धि करने वाले शब्द उच्चारण करने चाहिए। कई मनुष्य अपने ही पुत्र को गुलाम, तू मरेगा, और तू हराम है आदि शब्दों से पुकार देते हैं। ऐसे शब्दों से अपनी वाणी तो मलिन होती ही है, सुनने वाले के मन में भी निर्बलता का वायुमण्डल उत्पन्न होता है। अतः मनुष्य को उत्साहपूर्ण व प्रभावपूर्ण शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। अपने पुत्र को 'तू इन्द्र है', 'तू अमर होगा', 'तू सत्य स्वरूप है' और 'तू महान बनेगा' ऐसे शब्द बोलें तो सुनने वालों के मन भी प्रसन्न होते हैं।

मनुष्यों के नाम भी कूड़ाराम व गरीबदास आदि के स्थान पर निर्भय राम आदि सार्थक नाम से पुकारें ताकि उच्चारण करने से शुभविचार उत्पन्न हों। प्रत्येक मनुष्य को निश्चयपूर्वक ऐसा प्रयास करना चाहिए कि उत्साहमय विचार ही प्रकट हों। महाभारत के युद्ध का एक कारण वाणी द्वारा कटु शब्द उच्चारण करना भी है।

- ☞ **जहाँ स्वार्थ होता है, वहाँ विनाशिता होती है और जहाँ विनाशिता होती है वहाँ अग्नि प्रदीप्त हो जाती है।**
- ☞ **राष्ट्र का प्राण ईश्वरवाद है।**
- ☞ **राष्ट्र में यज्ञ-कर्म होना ही राष्ट्र की शान्ति है।**
- ☞ **राष्ट्र में जितना चरित्र होगा, उतना ही राष्ट्र पवित्र होगा।**
- ☞ **राष्ट्र में विविध सम्प्रदाय नहीं होने चाहिए।**
- ☞ **मिथ्या उच्चारण करने से मानव की आन्तरिक प्रतिभा नष्ट हो जाती है।**
- ☞ **धर्म और मर्यादा मानव के चक्षुओं में विराजमान होती है।**
- ☞ **वेद-मन्त्रों की पवित्र आभा में सर्वत्र संसार का ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है।**
- ☞ **जो समाज में अच्छाईयाँ ला देता है, वह आर्य कहलाता है।**
- ☞ **धर्म व्यापकता को कहते हैं और अधर्म संकीर्णता को।**
- ☞ **हृदय रूपी गुफा में ही तो प्यारा प्रभु ओत-प्रोत है।**
- ☞ **विवेक में मान-अपमान नहीं होता।**

१७ मन की प्रसन्नता

आयुर्वेद का पण्डित कहता है कि हे मानव! यदि तू अपने जीवन को ऊँचा बनाना चाहता है और आयुष्मान् बनना चाहता है तो तेरा मन प्रसन्न रहना चाहिए। मन का सम्बन्ध चन्द्रमा से है। चन्द्रमा से मन रस लेता है। मन के ही कारण इस पृथ्वी में औषधियां हैं। इन औषधियों का मन से सम्बन्ध है, इसलिए मन अधिक से अधिक प्रसन्न रहना चाहिए।

जिस मानव से कभी विच्छेद हुआ था, यदि उससे मिलन हो जाए तो मानव प्रसन्न हो जाता है। किसी मानव के चले जाने के पश्चात् वियोग होकर दुःखित हो जाता है। यह क्षणिक प्रसन्न होना और क्षणिक वियोग में आना है।

मानव को चाहिए उस आनन्द को प्राप्त करे जिससे मन का चित्त से सम्बन्ध है। चित्त भी मन की एक दशा है। यह मन का ही स्वरूप माना जाता है। इसको प्रसन्न करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। ऐसा ज्ञान जो किसी भी काल में हमारे अन्तरात्मा से बह जाने वाला न हो, उसका वियोग न हो। ऐसा ज्ञान प्रभु का चिन्तन है, जो सदैव बना रहता है और मन के आंगन में उसके उल्लास में प्रकाशित रहता है, तो चित्त प्रसन्न रहता है।

संसार का सबसे सूक्ष्म तत्त्व मन ही कहलाया गया है। वह इतना गतिमान है कि जो मानव प्रकृति माता को अपने में समर्पित करके मन को जान लेता है, तो वह प्रकृति के गर्भ को जान लेता है।

योगी का आत्मा मन पर सवार होकर ब्रह्माण्ड का भ्रमण कर लेता है। यह मन कहीं न कहीं रमण कर जाता है, कहीं समुद्र की तरंगां में, कहीं सूर्य की आभा में, कहीं गन्धर्व लोकों में, तो कहीं इन्द्र लोकों में रमण करता है। यह निकृष्ट से निकृष्ट गति भी करने लगता है। अतः प्रवृत्तियों पर संयम करके मन को ऊर्ध्व गति में रमण करना चाहिए।

मानव का मन बड़ा शक्तिशाली है। इसके द्वारा मानव कुछ के कुछ संकल्प कर बैठता है। संसार में जितने भी कार्य हैं, वे सब मन की संकल्प शक्ति के द्वारा होते हैं। दृढ़ संकल्प अवश्य पूर्ण होता है। यदि संकल्प अन्तःकरण से न किया जाए, तो वह पूर्ण नहीं होता।

मन की प्रक्रिया आहारों के ऊपर होती है। जैसा आहार होता है, वैसी ही मन की प्रक्रिया होती है। अन्न को पवित्र बनाकर ही मन पर अधिकार किया जा सकता है।

मन की गति

मन की गति बड़ी विचित्र मानी गई है। यदि यह स्थिर है, तो निर्णय अच्छा करेगा। यदि चंचल है, तो इसकी विलक्षण गति हो जाएगी और मनुष्य की मृत्यु का सामान बनाने लगेगा। सनत्कुमार ने महर्षि नारद को इस सम्बन्ध में एक अलंकार सुनाया जिससे मन स्थिर हो।

एक द्रव्यपति थे। उनके द्वार पर एक सेवक पहुँचा और कहा मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ। द्रव्यपति ने कहा, क्या वेतन लोगे? उस सेवक ने कहा कि मैं वेतन कुछ नहीं लूँगा, परन्तु मेरा एक नियम है कि जब मुझे कार्य करने को नहीं मिलेगा तो तब ही मैं आपको मृत्यु को प्राप्त करा दूंगा। द्रव्यपति ने कहा कि अच्छा, मेरे यहां कार्य करो।

वह सेवक द्रव्यपति के कार्य करने लग गया। द्रव्यपति जो भी कार्य उच्चारण करता, सेवक उस कार्य को कर देता। कुछ समय के पश्चात् उस द्रव्यपति का कोई कार्य उस सेवक को देने को न रहा। द्रव्यपति बहुत चिन्तित होने लगा। एक समय मार्ग में भ्रमण कर रहा था कि एक बुद्धिमान व्यक्ति मिला। उसने द्रव्यपति से कहा कि आप तो बड़े थकित होते चले जा रहे हैं। द्रव्यपति ने सेवक की सब वार्त्ता कह सुनाई कि जब सेवक के पास कोई कार्य

न रहेगा तो मुझे मृत्यु को पहुंचा देगा। अब मेरे पास उसको देने का कोई कार्य नहीं रहा है, मैं इससे अब कैसे बचूंगा?

बुद्धिमान व्यक्ति ने कहा कि भाई, उसको अपने कार्य में क्यों लगा रहे हो? संसार के कार्य में लगा दो, उसको छुटकारा नहीं मिलेगा और तुम भी बच जाओगे। द्रव्यपति गृह आए और आकर सेवक को संसार का कार्य बता दिया। वह संसार के शुभ कार्य करने लगा और उसे छुटकारा नहीं मिला।

यही दशा मनुष्य के मन की है। यदि मन को संसार के शुभ कार्यों में और परमात्मा के चिन्तन में लगाए रखें, तो यह यथार्थ रहता है। यदि छुटकारा मिला, संकल्प-विकल्प आए तो मनुष्य की मृत्यु का सामान एकत्रित करने लगता है।

सनत्कुमार ने कहा इसलिए मन को स्थिर करो। मन की याचना करो, यह मन बड़ा ऊँचा पदार्थ है। यह मन तुम्हारा परमात्मा से मिलान करा सकता है।

द्वेष व घृणा का प्रभाव

वास्तव में यह जगत् एक कृषकशाला है। जैसा बीजारोपण होगा, वैसी ही फसल तैयार हो जायेगी। यदि कोई मानव दूसरे से द्वेष करता है, तो वह द्वेष उसके अन्तःकरण में इतना प्रबल हो जाता है कि वह अपनी स्मरण-शक्ति को स्वयं ही निगल जाता है। अतः यह द्वेष दूसरे के लिए नहीं, अपने लिए ही किया जाता है। द्वेष की मात्रा मानव की स्मरण-शक्ति तथा सुकृतों का हनन कर देती है। सुकृतों के नष्ट हो जाने के पश्चात् मानव की परम्परा नष्ट हो जाती है। अतः मानव का कर्त्तव्य है कि वह सदैव विचार करके कार्य करे। किसी के प्रति भी द्वेषात्मक दुर्भावनाओं को न पनपने दे।

जो मानव दूसरों के प्रति अनिष्ट विचार बनाता है, वे वास्तव में दूसरों के प्रति नहीं बनते, वे तो उसकी भावनाओं तथा अन्तःकरण को शनै-शनै निगलते चले जाते हैं। यदि किसी के प्रति द्वेष किया जाए, क्रोधित हुआ जाए या अनिष्ट कल्पना की जाए तो उस समय तो उस मानव को प्रतीत नहीं होता किन्तु उससे उसके सब पुण्य हनन हो जाते हैं।

घृणा करना मानव का सबसे बड़ा पाप है। घृणा मानव की बुद्धि को नष्ट कर देती है। इससे मानव के विशाल प्रकाश वाले तन्तु नष्ट हो जाते हैं। तन्तु नष्ट होने के कारण मानव का विकास नहीं हो पाता। जो मानव घृणा के द्वारा अपने मस्तिष्क को संकुचित कर लेता है, उसके हृदय तथा मस्तिष्क का मिलान नहीं हो पाता। वह अपनेपन में नास्तिक बन जाता है। वह विशाल हृदय से संसार को दृष्टिपात ही नहीं कर पाता। मानव जब पापों का वृक्ष बना लेता है, तो स्वयं को नष्ट कर देता है। इसके विपरीत जब वह अच्छाइयों का वृक्ष उत्पन्न करता है, तो मानवता का वृक्ष उत्पन्न करता है। उस वृक्ष की छाया में विराजमान होकर प्रभु को धन्यवाद देता है। मानव को विशाल हृदय बनकर, ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वागति करके संसार में अच्छाइयों का वृक्ष लगाना चाहिए। हमें संसार की त्रुटियां पर दृष्टि नहीं रखनी चाहिए। ऐसा करने पर हम स्वयं त्रुटिपूर्ण हो जायेंगे।

१८सुखी गृहस्थ

गृहस्थ जीवन विचारकां का स्थल कहलाया गया है। यह भोग-विलास का स्थल नहीं है। पति-पत्नी के लिए वेद का आदेश है कि सूर्य और पृथ्वी की भाँति परिक्रमा करते रहो। पति-पत्नी की यह परिक्रमा विचारों की कही गई है। विचारों की परिक्रमा गृह के वातावरण को शुद्ध और पवित्र बना देती है। उस गृह में जो भी पुरुष आता है, वह उस गृह से कुछ लेकर जाता है। उस गृह में रहने वाली उनकी सन्तान की ऊर्ध्व गति वाली बुद्धि होती है। तब संसार में अशुद्धवाद नहीं रहता।

यदि गृहस्थाश्रम में रहने वाले पति-पत्नी एक-दूसरे के विचारों को नष्ट कर देते हैं, तो उस समय वह गृह नरक बन जाता है। जहां एक-दूसरे के वाक्यों को स्वीकार किया जाता है तो वह घर स्वर्ग बन जाता है।

जिस राष्ट्र में, समाज में अथवा गृह में स्त्रियों का सम्मान होता है अथवा उनकी प्रतिष्ठा होती है, वह गृह स्वर्ग के तुल्य होता है। संसार में पति का यदि कोई मित्र है, तो वह पत्नी है। यदि पत्नी विदुषी हो तो और भी सौभाग्य होता है। पत्नी ही पति को प्रेरणा देती है कि यह कार्य हमारे हित का नहीं है, यह कदापि नहीं होना चाहिए।

जिस काल में माताओं के हृदय में ज्ञान और प्रकाश की अग्नि प्रदीप्त रहती है तो उनके हृदयों से सुगन्धि उत्पन्न होती है। उससे राष्ट्र और समस्त संसार ऊँचा बनता चला जाता है। जिस गृह में माता के हृदय में वेद की पवित्र भावनाएं प्रदीप्त रहती हैं, विवेक और चरित्र होता है, मानवता होती है, वह गृह बड़ा सौभाग्यशाली कहलाता है। जिन गृहों में क्लेश की मात्रा अधिक होती है, एक-दूसरे की निन्दा अधिक होती है, उस गृह में प्रविष्ट होने वालों के लिए नर्क है। यदि मानव संसार को ऊँचा बनाना चाहता है तो धर्मपत्नी के साथ विचारों को मानवता के आंगन में ले जाना होगा। मानव को स्वयं को पतित होने से बचाना होगा। ऐसा क्रोध नहीं करना चाहिए जिससे हानि हो।

जब मानव में चरित्र की तरंगें होती हैं, तो वहां सुगन्धि हुआ करती है। जब वेद का प्रकाश मानव हृदय तथा मस्तिष्क में प्रदीप्त रहता है, तो अन्धकार वहां कभी छू भी न सकेगा। वेद का प्रकाश इस प्रकार का है कि वह जिस अंग को छूता है, वही पवित्र हो जाता है।

यदि पति-पत्नी गृह में कभी यज्ञ नहीं करते, तो वह गृह अशुद्ध परमाणुओं से भर जाता है। यदि यज्ञ करते हैं तो गृह में आने वालों के विचार भी शुद्ध हो जाते हैं। जब गृह में रहने वाले पति-पत्नी मानव जीवन के लिए सुन्दर योजना, सुन्दर विचार तथा महान कार्य करते हैं तो यह निश्चित है गृह में रहने वाले दीर्घायु होते हैं।

जिस प्रकार पति-पत्नी सुन्दर गृह बनाकर उसमें वास करते हैं इसी प्रकार परमात्मा ने यह ब्रह्माण्ड रूपी गृह का निर्माण करके उसके कण-कण में समाहित हो रहा है। गृह के कण-कण में धर्म और महत्ता होनी चाहिए। यह समाज और राष्ट्र गृहां से ऊँचा बनता है। संस्कार व कल्पना ऊँची तथा विलक्षण होनी चाहिए जिससे मानववाद ऊँचा बनता चला जाए।

प्रत्येक मानव आनन्द व सुख चाहता है। वह त्याग और तपस्या से ही प्राप्त हो सकता है। परमात्मा की इस सृष्टि में मनुष्य अल्पज्ञ होने के नाते प्रभु की प्रेरणा को नष्ट कर देता है। प्रकृति के बन्धन में और अपने स्वार्थ में आकर एक-दूसरे को नष्ट करने की भावनाएं बना लेता है। बिना नियम के गृहस्थाश्रम तथा ऐश्वर्य का त्याग उचित नहीं है। ऋषि परम्परा के अनुसार ब्रह्मचर्य, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम व सन्यासाश्रम का पालन करना चाहिए।

जब एक ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य से गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होता है तो उसे व्यापक बनने की आवश्यकता होती है। उसके विचारों में व्यापकता आकर उस पर कर्त्तव्यवाद निहित हो जाता है। आचार्यों व माता-पिता के प्रति नाना प्रकार के उद्देश्य समीप आने लगते हैं।

गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने पर उसके पास पवित्र द्रव्य होना चाहिए। जिस विद्या को गुरू से प्राप्त किया था, उसका विचार करना और अनुभव करना गृहस्थों का कर्त्तव्य है।

गृहस्थाश्रम एक स्वतन्त्र जीवन है। इसमें किसी का कोई प्रतिबन्ध नहीं, किसी की कोई आधीनता नहीं, स्वतन्त्र होकर संसार में कार्य करता है। यह आश्रम ऐसा है जिसमें पत्नी और पति दोनों मिलकर आनन्द मनाते हैं और गृह को स्वर्ग बनाते हैं। अतिथियों की सेवा करना, ब्रह्मयज्ञ और ब्रह्म उपासना करना, गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने वालों का कर्त्तव्य है।

१९ विष्णु से रामराज्य

प्रत्येक मानव के हृदय में विचार आता है कि उसे विष्णु बनना चाहिए। और विष्णु उस काल में बनता है जब विष्णु की आभा को अच्छी प्रकार जान लेता है। विष्णु के नाना पर्यायवाची शब्द माने गए हैं जैसे परमात्मा, आत्मा, राजा, सूर्य आदि।

परमात्मा को भी विष्णु कहा गया है क्योंकि संसार में सर्वव्यापक है। वह मानव भी विष्णु कहलाता है जो अपनी इन्द्रियों को विजय करने वाला और प्रवृत्तियों पर संयम करने वाला हो। उस राजा को विष्णु की उपाधि प्रदान की जाती थी, जिस राजा के यहाँ चार विशेषताएं होती थी। एक भुज में पद्म, द्वितीय भुज में गदा, तृतीय में शंख और चतुर्थ में चक्र। ये चार भुज या चिन्ह भी कहलाते हैं।

एक समय मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने महर्षि वशिष्ठ से प्रश्न किया कि भगवन्! मेरा राष्ट्र राम-राज्य कैसे बन सकता है? महर्षि वशिष्ठ बोले, "हे राम! इस राष्ट्र को राम-राज्य बनाने से पूर्व तुम्हें विष्णु बनना है। उस राजा को विष्णु कहते हैं जिस राजा के यहाँ चार भुज (चिन्ह) होते हैं। एक भुज में पद्म, द्वितीय में गदा, तृतीय में चक्र और चतुर्थ में शंख। जब तक तुम स्वयं विष्णु नहीं बनोगे, तुम्हारा राष्ट्र राम-राज्य नहीं हो सकेगा।" मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम बोले, "हे प्रभु! मुझे चारों भुजों के विषय में विस्तृत रूप से वर्णन कीजिए।"

महर्षि वशिष्ठ बोले, "सबसे प्रथम तुम्हारे भुजों में पद्म होना चाहिए। पद्म नाम है सदाचार और शिष्टाचार का। जिस राजा के राष्ट्र में सदाचार और शिष्टाचार होता है, उस राजा का राष्ट्र पवित्र कहलाता है। जिस राष्ट्र में सदाचार और शिष्टाचार नहीं होता, हृदयों में एक-दूसरे का सम्मान नहीं होता तो जानो वह राष्ट्र आज नहीं तो कल नष्ट हो जायेगा। राष्ट्र में यथार्थ विद्या होनी चाहिए। जिस विद्या में सदाचार और शिष्टाचार की तरंगें हो, वह विद्या सर्वोत्तम मानी जाती है। ऐसी विद्या राष्ट्र को सफल बना देती है। यह पद्म राष्ट्र को ऊँचे से ऊँचा बना सकता है। सारे संसार पर तुम शासन कर सकते हो। यदि सदाचार और शिष्टाचार नहीं तो तुम्हारा राष्ट्र राम-राज्य किसी भी प्रकार नहीं बन सकता।

द्वितीय तुम्हारे राष्ट्र में गदा होनी चाहिए। मग्न होते हुए ऋषि बोले, गदा नाम है क्षत्रियों का। राष्ट्र में बलवान क्षत्रिय होने चाहिए। उन्हें अपनी आत्मा का ज्ञान होना चाहिए। उनका ब्रह्मचर्य पौष्टिक होना चाहिए। जिस राष्ट्र में अपराधियों को दण्ड दिया जाता है, वह राष्ट्र सदैव राम-राज्य बन कर रहता है। जिस राष्ट्र में अपराधियों को दण्ड नहीं दिया जाता, वह राष्ट्र आज नहीं तो कल नष्ट हो जाएगा। तुम्हें गदा को स्थिर करना है, अपराधी को दण्ड देना है और दुराचार को नहीं रहने देना है। तुम्हारे राष्ट्र में पद्म और गदा मुख्य रूप से रहने चाहिए। यदि तुम्हारे राष्ट्र की कोई वार्त्ता किसी द्वितीय राष्ट्र में पहुँच जाती है तो जानो राष्ट्र के क्षत्रिय ऊँचे नहीं हैं।

तृतीय चक्र होना चाहिए। चक्र नाम है संस्कृति का। जिस राष्ट्र में संस्कृति होती है, उस राष्ट्र में चक्र होता है। संस्कृति वह अमूल्य वाणी है जो मानव को सदाचार और शिष्टाचार देने वाली है। जो संस्कृति कृषि करने में, व्यापार में, धनुर्विद्या में, नाना प्रकार के यन्त्रों के आविष्कार में, सदाचार में, ब्रह्मचर्य की सुरक्षा करने में, अपनी आत्मा की उन्नति करने में और परमात्मा तक पहुँचने में मार्गदर्शक हो, ऐसी संस्कृति जिस वाणी में ओत-प्रोत हो, उस वाणी का नाम संस्कृति है।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने महर्षि वशिष्ठ से कहा कि भगवन्! मुझे शंख का निर्णय और करा दीजिए, मैं शंख को और जानना चाहता हूँ। महर्षि वशिष्ठ बोले, "हे राम! तुम कितने उत्तम हो, संसार में तुम्हारा बड़ा यश है। तुम धन्य हो जो मेरे आदेशों का पालन करने को तैयार हो। शंख नाम है वेद-ध्वनि का। जिस राष्ट्र में वेद-ध्वनि होती है, नाना प्रकार के स्वरों में वेदों का पाठ गाया जाता है, उस राष्ट्र में अन्तरिक्ष भी वेद-मन्त्रों से आच्छादित

रहता है। जिस राष्ट्र में वेदों की शिक्षा दी जाती हो, वहाँ का वातावरण भी उत्तम होता है और मानवों की विचारधाराएं भी ऊँची होती हैं। वेदों का ज्ञान ईश्वरीय ज्ञान है। सृष्टि के प्रारम्भ से ही परमात्मा ने वेदों का ज्ञान सभी मानवों के लिए दिया है। जिस राष्ट्र में यज्ञ होते हैं और यज्ञों में वेदों का पाठ होता है तो उस राष्ट्र में राजा तथा प्रजा आपस में प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं।"

जिस राजा के भुजों में ये चार चिन्ह होते हैं अथवा चार नियम होते हैं, वह राष्ट्र राम-राज्य कहलाता है। ऐसे राष्ट्र के राजा को विष्णु की उपाधि से अलंकृत किया जाता है। जिस राजा के राष्ट्र में विज्ञान पराकाष्ठा पर हो व गरूड़ वाहन हो, उसे विष्णु कहते हैं। गरूड़ नाम वायुयान पर विराजमान होकर, जो लोक-लोकान्तरों की उड़ान उड़ने वाला हो, उसे विष्णु कहते हैं। गरूड़ नाम का पक्षी भी होता है।

- ☞ **जो मानव संकल्प धारण करता है, उसका जीवन महान बना करता है।**
- ☞ **जब कामनाओं की पूर्ति नहीं होती तो क्रोध उत्पन्न होता है।**
- ☞ **अशुद्ध आहार करने से अशुद्ध तरंगों का जन्म होता है और शुद्ध आहार करने से शुद्ध तरंगों का जन्म होता है।**
- ☞ **आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार करके ब्रह्म तो बन जाता है, परन्तु परब्रह्म कदापि नहीं बनता।**
- ☞ **जो जिसके निकट जाता है उसके परमाणुओं उसमें आ जाते हैं।**
- ☞ **जीवन श्वासों पर आधारित है।**
- ☞ **योगाभ्यास से चार सौ वर्ष या इससे भी अधिक आयु हो सकती है।**
- ☞ **जीवात्मा ज्ञान के द्वारा प्रभु को जान लेता है और प्रयत्न के द्वारा उसमें रमण करता रहता है।**
- ☞ **आत्मा का भोजन ज्ञान और आभूषण यज्ञ है।**
- ☞ **जिन कार्यों को करने से मानव के हृदय की गति तीव्र हो जाये वह कार्य अधर्म है और जिन कार्यों के करने से हृदय की गति मन्द हो, सामान्य होती है, वह कार्य कर्त्तव्यवाद में होता है।**

२०इतिहास में भ्रान्तियां

आधुनिक काल में सतयुग, त्रेता और द्वापर काल के इतिहास की अनेक घटनाओं का अशुद्ध रूप से चित्रण किया जाता है। मानव समाज भ्रमित हो रहा है। गीता, रामायण और महाभारत आदि ग्रन्थों के बहुत से अंश 'प्रक्षिप्त' हैं। इन ग्रन्थों में अर्थ का अनर्थ किया गया है।

ऐतिहासिक ग्रन्थों के अतिरिक्त वेद जैसे पवित्र ग्रन्थों के भाष्य में भी तोड़-मरोड़ कर अर्थ का अनर्थ करा दिया गया। कई स्थानां पर आपत्तिजनक अर्थ किया गया है। बौद्ध काल, जैन काल, मुस्लिम काल और विशेष रूप से अंग्रेजों के काल में धार्मिक ग्रन्थां के मूलभूत सिद्धान्तों में परिवर्तन कराया गया है। कोई भी ऐसा ग्रन्थ नहीं जिसमें परिवर्तन न हुआ हो। अनेक लोगों ने तो यह भी कह दिया कि रामायण और महाभारत काल्पनिक ग्रन्थ हैं। ऐसी धारणा व्यर्थ है और मस्तिष्क की विकृति है।

वास्तव में-चेतांग और रमाशंकर नामक दो विद्वानों ने द्रव्य लेकर महाभारत के पात्रां को विकृत कर दिया। उसी काल में रेणकेतु और स्वाति नामक दो विद्वान हुए जिन्होंने द्रव्य लेकर रामायण के पात्रों को विकृत कर दिया। इन दोनों ग्रन्थां के मुख्य पात्रों को भ्रष्ट करने में उपरोक्त चारों विद्वानां ने अपना पूर्ण प्रयास किया। रामायण में भी श्रीरामचन्द्रजी और महाभारत में श्रीकृष्णचन्द्रजी को परमपिता परमात्मा का अवतार चित्रित करने का प्रयास किया। ऐसा करने से दोनों महापुरुषों की महत्ता समाप्त हो गई क्योंकि किसी भी महापुरुष को परमात्मा मानना असंगत है।

महाभारत के युद्ध के पश्चात् महर्षि व्यास ने एक ग्रन्थ की रचना की। इसका नाम 'जय' रखा, जिसमें ८५०० श्लोक थे। कुछ समय के पश्चात् महर्षि व्यास के एक शिष्य ने श्लोकों की वृद्धि करके इसमें लगभग १५००० श्लोक कर दिये तथा इसका नाम भी 'जय भारत' कर दिया। समय बीतने के साथ-साथ श्लोकां की वृद्धि होती रही। महर्षि दयानन्द के समय लगभग ३५,००० श्लोक थे। आधुनिक काल में श्लोकां की संख्या एक लाख से ऊपर है और अब इस ग्रन्थ का नाम महाभारत है।

महाराजा शिव व गणेश

शिव के नाना पर्यायवाची शब्द हैं जैसे परमात्मा, राजा, आत्मा, सूर्य, कैलाश, पर्वत आदि। शिव नाम उस द्रव्यपति का भी है जो अपने द्रव्य को यथाशक्ति संसार के शुभ कार्यों में लगाता है।

जिस राजा के राष्ट्र में ऊँचे विचारों वाली प्रजा रहती है उस प्रजा को कैलाश कहते हैं और उसके पति (राजा) को राजा की उपाधि से अलंकृत किया जाता है। त्रेता के काल में भगवान शिव हुए जो रावण के गुरू कहलाते थे। राजा हिमाचल की कन्या पार्वती के साथ उनका विवाह-संस्कार हुआ था। एक ही वस्त्र को लेकर पर्वतों पर रमण करते रहते थे। उनका एक बालक था जो गणेश कहलाता था।

गणेश की घ्राण शक्ति बहुत अधिक थी। वह बालक बहुत संस्कारों वाला था। कभी भी उसे राजसिक तथा तामसिक गुण में नहीं देखा गया। पार्वती, शिव और गणेश में वैज्ञानिक चर्चाएं होती रहती थी। एक समय महाराजा शिव ने अपने पुत्र गणेश से कहा, "हे पुत्र! तुम अपने अन्तःकरण की भावनाओं को उच्चारण करो। हम तुम्हें रजोगुणी नहीं देख पा रहे हैं।" उस समय गणेश ने कहा, "हे भगवन्! आप जैसे बुद्धिमान माता-पिता मिले हैं, यह मेरा सौभाग्य है। मन से अच्छी वार्त्ता विचारता रहता हूँ, तब रजोगुण आने का कोई कारण नहीं बनता। रजोगुण में रहूँगा तो जीवन अधोगति में चला जायेगा, सतोगुणी बनूँगा तो अग्नि तुल्य ऊपर की ओर चला जायेगा।"

आजकल गणेश का सिर हाथी का माना जाता है। यह वार्त्ता अविवेकपूर्ण है। कहाँ एक मानव और कहाँ एक हाथी का शीश? कितना विशाल बन जायेगा? गणेश के हाथी की तरह सूंड था, यह न मानने वाला वाक्य है।

महाराजा शिव का पुत्र गणेश महान वैज्ञानिक था। उसने इस वाक्य पर अनुसन्धान किया कि निराशा में कैसे मृत्यु है और उल्लास में कैसे जीवन प्राप्त होता है। एक ऐसा यन्त्र भी निर्माणित किया जो दूर स्थित (विद्यमान) होता हुआ उसे सहायता प्रदान करता रहता था।

वे अपने यान लेकर मंगल लोक में गति करते थे। एक समय मंगल मण्डल का एक यान पृथ्वी मण्डल पर आया। इस यान का नाम शुव्रेळतु यान था। गणेश जी ने पिता की आज्ञा लेकर उस यान को ग्रहण कर लिया। उस पर अनुसन्धान किया तो उन्हें प्रतीत हुआ मंगल में प्राणी रहते हैं। मंगल में वेद की आभा रमण करती है। एक जमेतकेतु नामक यन्त्र का निर्माण किया जिससे पृथ्वी की परिक्रमा करते थे। उस यन्त्र की शक्ति बढ़ाकर १७१ मण्डलों की परिक्रमा करने में सफल हो गए। उन्होंने जाना किस-किस मण्डल में कौन-कौन सा तत्व प्रधान है।

उसने जाना पाँचों तत्वों में परमाणु नहीं रहते। जगत में तीन प्रकार के परमाणु रहते हैं-पृथ्वी, जल और अग्नि। वायु इन परमाणुओं के लिए हुए अन्तरिक्ष में गति करता रहता है। आधुनिक काल में गणेश की सवारी मूषक मानी जाती है, परन्तु ऐसा नहीं है। गणेश के एक यान का नाम चंविगत था जिस पर विद्यमान होकर वह लोक-लोकान्तर की परिक्रमा करता था।

परम्परा से गणेश जी उपाधि चली आ रही है। जिस समय व्यास मुनि महाभारत की लेखनी प्रारम्भ करने लगे तो उन्होंने कृपाचार्य जी से कहा कि यदि गणेश जी मेरे साथ हों तो मैं कौरवों और पाण्डवों के इतिहास को अंकित कर सकता हूँ। महर्षि व्यास जो उच्चारण करते, गणेश जी उसे लेखनीबद्ध करते रहते थे। एक रात्रि और एक दिवस में सर्वत्र महाभारत का साहित्य लिखा गया। उनकी लेखनी महान एवं तीव्र थी। वेद का आचार्य कहता है जिसका मस्तिष्क शान्त और ऊर्ध्वा में होता है, उसको गजराज के मस्तिष्क जैसा माना जाता है।

गरूड़ मुनि

रामायण में गरूड़ मुनि को पक्षी उच्चारण किया गया है। गरूड़ वह होता है जो मन के चंचलता रूपी सर्प को निगल जाता है। गरूड़ मुनि पक्षी नहीं, परन्तु एक विद्वान महापुरुष थे।

गरूड़ मानव राष्ट्रवादी कहलाता है। वह प्रजा पर शासन करने का अधिकारी होता है। स्वार्थ भाव सबसे बड़ा शत्रु है और सर्प कहलाता है। स्वार्थ के साथ जो विद्वान महाचंचल मन को निगल लेता है, वह गरूड़ कहलाता है।

वेद एक ऐसी विद्या है, प्रकाश है जो मन में नाना प्रकार के छाए हुए अन्धकार को नष्ट कर देता है। अपने जीवन को शिरोमणि बनाकर हमें गरूड़ बनना चाहिए। गरूड़ मुनि पक्षी की भांति अपने यन्त्रों में विद्यमान हो करके अन्तरिक्ष में गति करते रहते थे। बहुत बड़े वैज्ञानिक थे। गरूड़ ने रावण से भी संग्राम किया था।

महर्षि काक-भुषण्ड व महर्षि लोमश

आधुनिक काल महर्षि काक-भुषण्ड (काक भुशण्ड) को अज्ञानता वश एक पक्षी उच्चारण किया जाता है। बुद्धिमानों को अपने मस्तिष्क से ऐसी वार्त्ताओं को दूर कर देना चाहिए। यह सत्य है काग (कौवा) एक पक्षी भी होता है। भुषण्डिकेतु नामक एक ऋषि थे। ये भारद्वाज गोत्रीय थे और शासन परिवर्तन करके अंगिरस गोत्री हो गए थे। इनकी पत्नी का नाम रूषेणकेतु था। इनके पुत्र का नाम काक-भुषण्ड था जो ब्रह्मवेत्ता था और प्राण-विद्या में प्रवीण था।

महर्षि वैशम्पायन की पत्नी का नाम शकुन्तका था। इनके पुत्र का नाम महर्षि लोमश था। इनका आश्रम महर्षि भुषण्डिकेतु के निकट ही था।

काक भुषण्ड और लोमश को माता-पिता ने महान तपस्वी बनाया। दोनां को शिक्षा और दीक्षा में परिणित

कर दिया। दोनों एक ही गुरू के शिष्य थे।

काक भुषण्ड जी प्राण विद्या द्वारा अपने शरीर को अन्तरिक्ष में उड़ा लेते थे। हनुमान जी ने यह विद्या इसी ऋषि के द्वारा प्राप्त की। इसी विद्या के द्वारा हनुमान जी अपने शरीर को बड़ा या छोटा कर लेते थे। यह सब प्राण-विद्या की ही विशेषता है।

महर्षि व्यास का जन्म

महर्षि पारा के अपनी धर्मपत्नी से दो पुत्र थे। महर्षि व्यास और दुन्दु ऋषि (धुन्धु ऋषि)। आधुनिक काल में किसी धूर्त ने महर्षि व्यास को मछली से उत्पन्न बताया है। तुम जानते ही हो मछली का गर्भाशय कैसा

होता है और माता का कैसा? जैसा गर्भाशय होगा वैसी ही उसके सन्तान होगी। मानव स्त्री के गर्भाशय से मानव और मछली के गर्भाशय से मछली उत्पन्न होती है। ऐसा परमात्मा का प्राकृतिक नियम है। इसमें कहीं भी अपवाद नहीं मिलता।

जैसे कोई मूर्ख व्यक्ति किसी राजा के यहाँ पहुँच जाए और वह वहाँ भाग्यवश राज्य का मन्त्री बन जाए तो वह राजा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करेगा। इसी प्रकार जो व्यक्ति परमात्मा के ज्ञान का जानने वाला बन जाता है, वह परमात्मा के नियम के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करेगा।

मछली के गर्भ से मानव कन्या का जन्म होना सर्वथा ही नियम विरुद्ध है। इसको कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति कभी भी स्वीकार नहीं करेगा। परमात्मा के बनाए नियम अटल और सत्य हैं। तीनों काल में एक से हैं। परमात्मा की चलाई परम्परा को कोई भी तोड़ नहीं सकता चाहे महर्षि हो, योगी हो अथवा मुनि हो।

जैसे मानव को शीत लगने लगे और अग्नि के समक्ष चला जाए तो ज्यों-ज्यों उसमें अग्नि के परमाणु प्रवेश करते जाएंगे, त्यों-त्यों उसका शीत दूर हो जायेगा। ऐसे ही जो मानव परमात्मा के गुणों को जान लेता है, उसमें शनै-शनै परमात्मा के गुण प्रविष्ट हो जाते हैं।

माता गंगोत्री

द्वापर काल में राजा गंगेतुराज की गंगोत्री नामक एक सुन्दर कन्या थी। उसका विवाह राजा शान्तनु से हुआ था। राजा शान्तनु के गंगोत्री से सात पुत्र उत्पन्न हुए, परन्तु सब मरते गए। महाराजा शान्तनु को बड़ी चिन्ता हुई कि उनके राष्ट्र का कोई उत्तराधिकारी नहीं रहा। कुछ समय के पश्चात् बड़ा सुन्दर आठवां बालक उत्पन्न हुआ। विद्वानों ने बालक का नाम गंगशील रखा। गंगशील बाल्यावस्था में ही बड़ा तेजस्वी और चतुर था। यही गंगशील बाद में कौडिल्य ब्रह्मचारी और भीष्म पितामह के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ।

जब माता गंगोत्री का स्वर्गवास होने लगा तब राजा शान्तनु और कौडिल्य ब्रह्मचारी दोनां उपस्थित थे। माता ने पहले अपने पुत्र को आदेश दिया, "इस समय मेरे अन्तिम सांस चल रहे हैं। मेरा जीवन समाप्त होने वाला है। मेरा आदेश है कि जब तक तू जीवित रहे तब तक अखंड ब्रह्मचर्य का पालन करे जिससे तुझे मृत्यु भी नहीं छू सके और अपनी इच्छानुसार शरीर को त्यागने वाला बने। मेरा गर्भाशय तभी उज्ज्वल होगा जब तू महान ब्रह्मचारी बन करके अपने जीवन को हर प्रकार से उच्च बनाएगा। तू ब्रह्मचर्य से हीन होकर संसार का कीड़ा न बनना। सूर्य के समान तेजस्वी बनना जैसे सूर्य प्रातः काल उदय होकर तीनां लोकां को तपायमान करता है और महान रात्रि के अन्धकार को समाप्त करके अपने दिव्य प्रकाश से मानव को उच्च बना देता है वैसे ही तू भी महान तेजस्वी बनना। यदि तूने अपने शरीर को और राष्ट्र को दूषित किया तो तेरा जीवन न होने के तुल्य होगा।"

इसके पश्चात् अपने पतिदेव से कहा, "हे पतिदेव! मेरा मृत्युकाल आ गया है। मेरे कुछ ही सांस शेष हैं। मैं इस समय परलोक को जा रही हूँ। हे भगवन्! आप मेरे स्वामी हैं और यह हमारा बालक है। परमात्मा की दया से

हम तीनां का सम्बन्ध बन गया है। यह मिलाप हो गया है। आप राजा बन गए, मैं आपकी धर्मपत्नी बन गई। हम तीनां के मेल का इतना ही समय परमात्मा ने दिया था।

अच्छा भगवन्! मेरा एक आदेश है। वास्तव में पत्नी अपने पति को क्या आदेश दे? पर शुभ आदेश देने में कोई किसी प्रकार की हानि नहीं होती। हे पतिदेव! यदि आपको संसार की इच्छा जागृत हो जाए तो आप दूसरा विवाह करा लेना। आपने विवाह नहीं कराया और आपके कुविचार बन गए या आपने किसी भी व्यक्ति की कन्या को भ्रष्ट कर दिया तो यह राष्ट्र भ्रष्ट हो जाएगा। हे पतिदेव! आप भ्रष्ट न हो जाना। यदि आप अपने मार्ग से भ्रष्ट हो गए तो राष्ट्र में भ्रष्टाचार पैळल जाएगा। आपका राष्ट्र दूषित हो जाएगा। आपको परमात्मा ने उच्च कर्मों के आधार पर इतने बड़े साम्राज्य का राजा बनाया हुआ है।

मृत्यु समय मेरा यही आदेश है। आपके समक्ष यही अनुरोध है। आप मेरे अनुरोध को अवश्य स्वीकार करें। यदि आप अन्तिम काल में राज्य को त्यागना चाहें तो परमात्मा ने जैसा स्वच्छ और निर्मल राज्य दिया है वैसा ही परमात्मा के समक्ष अर्पित कर देना। यदि आपने अपने रहते हुए अपने राष्ट्र को अपने चरित्र दोष से दूषित कर दिया, परमात्मा को दूषित राज्य अर्पण किया या स्वयं चरित्र से दूषित हो गए तो आप कीड़े के तुल्य बन जायेंगे।"

माता गंगोत्री ने ऐसा आदेश देकर, नमस्कार करके अपने प्राणों को त्याग दिया। आज ऐसी माता कहाँ से लाएं और कहाँ खोजें, जो अपने पुत्र और पति को इतना सुन्दर आदेश देने वाली हो। राजा शान्तनु ने बड़े आनन्दपूर्वक नाना उत्तम सामग्री संचित करके नाना विद्वानों के द्वारा विधिपूर्वक अन्त्येष्टि संस्कार किया। कौडिल्य ब्रह्मचारी ने भी अपनी माता के अन्त्येष्टि संस्कार में वेद मन्त्रों का पाठ किया।

उस महान ब्रह्मचारी ने कैसा सुन्दर आदेश माता से पाया। जिस समय महाभारत संग्राम में अर्जुन, शस्त्रों का प्रहार उनके शरीर पर करते थे तो भीष्म पितामह के शरीर से शस्त्र भी उछल जाते थे। शस्त्र भी दूर भागते थे और त्वचा में प्रवेश नहीं कर पाते थे। उस समय अर्जुन ने एक वाक्य कहा था कि हे पितामह! मेरे अस्त्र-शस्त्र आप पर आघात क्यों नहीं कर पाते? भीष्म पितामह ने कहा था कि "हे पुत्र! हे बालक! मैंने माता के आदेश द्वारा उस अवस्था को पाया है कि जिससे मैं मृत्यु विजयी बन गया हूँ। मैं चाहूँगा तो मेरी मृत्यु होगी, अन्यथा कदापि नहीं होगी।" कैसा सुन्दर ब्रह्मचारी था?

गंगा और त्रिविधा

परमात्मा ने हमारे लिए तीन प्रकार की गंगाएं अवतरित की हैं। एक मधोति गंगा जो ब्रह्म लोक में रमण करती है। द्वितीय आकाश गंगा, जो अंतरिक्ष में रमण करती है और तृतीय मृत मण्डल में रमण करने वाली गंगा। तीनों वेद भी त्रिविधा कहलाते हैं। इन्हें ज्ञान गंगा, कर्म गंगा और उपासना गंगा भी कह देते हैं। शिव और शंकर भी परमात्मा के ही नाम हैं। शिव की जटा वाणी कहलाती है जो वेदों में है। अतः वेदवाणी शिव की जटाओं से उत्पन्न हुई कही जाती है। यह ब्रह्मा की पुत्री भी कहलाती है। इन गंगाओं में स्नान करने से हृदय पवित्र हो जाता है और हम संसार-सागर से पार हो जाते हैं।

गंगा नदी का कन्या रूप असत्य

हिमालय पर्वत से बहने वाली गंगा नदी गोमुख से निकलती है। यह जल की नदी जड़ है। चेतना शून्य और ज्ञान शून्य है। जल कभी भी कन्या रूप में नहीं आता। यह तो हो सकता है कि कोई कन्या गंगा नदी में किसी स्थान पर गिर कर बह गई हो, उसको किसी ने निकालकर गंगा नाम रख दिया हो। भीष्म-पितामह की माता गंगोत्री राजा गंगेतुराज की कन्या थी। बहुत त्यागी और तपस्विनी थी जिसने देवव्रत ब्रह्मचारी को (बाद में भीष्म पितामह) को महान संस्कार दिये।

गंगा नाम आत्मा का भी है जो नौ द्वारों वाले मानव शरीर को पवित्र कर रहा है। यदि आत्मा शरीर में न होता, तो इन नौ द्वारों का कुछ भी नहीं बन सकता था। इसी के द्वारा शरीर पवित्र बनता है। जब आत्मा इस शरीर को त्यागकर चल देता है तब इस निष्प्राण शरीर को मानव अपवित्र मानते हैं।

मानव शरीर में तीन नाड़ियाँ-इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना या गंगा, यमुना, सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हैं।

लौकिक गंगा-राजा सगर की सेना में ६० हजार सैनिक थे जो उनके पुत्र तुल्य थे। उन्होंने हिमालय से पृथ्वी पर गंगा को लाने का प्रयास किया। जगह-जगह खुदाई की व निर्माण कार्य किया। इनकी वंशावली में सभी राजाओं ने अपने-अपने समय में प्रयास किये। सातवीं पीढ़ी में महाराजा सगर को गंगा को पृथ्वी पर लाने का श्रेय मिला। संसार को जलमय, अन्नमय और आनन्द में बनाना यह राजाओं का कर्त्तव्य होता है।

समुद्र-मन्थन

सृष्टि के प्रारम्भ में दैत्य और देवताओं ने समुद्र का मन्थन किया। इस संसार रूपी समुद्र का मन्थन किया जाता है। जब योगी साधक बनता है तो वह संसार रूपी समुद्र को अपने हृदय में मन्थन करता है। सभी मानवों में दैत्य और देवताओं दोनों प्रकार के संस्कार अथवा प्रवृत्तियाँ होती हैं। दोनों प्रकार के संस्कारों का आपस में टकराव होना ही दैत्य और देवताओं का युद्ध कहलाता है। देव अथवा योगी बनने वाला वेद रूपी अमृत को अपना लेता है। ईश्वरीय ज्ञान को अपनाता हुआ अमृत को लेने का प्रयास करता है। वेद से विपरीत चलने वाले दैत्य कहलाते हैं और अपने जीवन की ध्रूवा गति कर लेते हैं। देवता जब ज्ञान रूपी अमृत को पान कर लेता है तो उसका हृदय अमृतमय हो जाता है। त्यागी और तपस्वी हो जाता है और रत्नों (गुणों) की प्राप्ति कर लेता है।

देवता वह होता है जो अच्छाइयों को धारण करता हुआ समाज में भी अच्छाइयों का प्रसारण करता है। द्वापर काल में महर्षि वेदव्यास, कणाद, गौतम व कपिल आदि ऋषियों ने पृथ्वी पर चार कुम्भ स्थान नियुक्त किये थे। तब से चारों स्थानों पर कुम्भ पर्व मनाया जाता है। ये चारों स्थान महान ऋषियां की भूमि रहे हैं।

ऋषि-मुनियों ने कहा कि ऐसे अवसरों पर जो तपस्वी महापुरुष वेद ज्ञान रूपी अमृत का पान किये होते हैं वहाँ प्रजा में प्रसारण करके चले जाते हैं। सुन्दर नदियां के जल में स्नान करके प्राणी उन महापुरुषों की वार्त्ताओं को सुनकर, ऊँचे संस्कारां की उपलब्धि करते हैं। त्याग और तपस्या की प्रेरणा हृदय में प्रदीप्त हो जाती है।

तप के बिना मानव अमृत को प्राप्त नहीं कर सकता। जब मानव अपने को ऊँचा बनाता है तो वह प्रत्येक स्थान में कुम्भ का दृष्टिपात करता है। कुम्भ क्या है? यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड जिसमें लोक-लोकान्तर समाहित हो रहे हैं, एक कुम्भाकार जैसा होता है। माता के गर्भस्थल में बालक कुम्भाकार की भाँति होता है। मानव का मस्तिष्क भी कुम्भाकार के तुल्य माना गया है। ब्रह्मरन्ध्र और त्रिकुटी का जब समन्वय हो जाता है, तो उस समय हृदय में महानता आती है और मानव संसार-सागर के पार हो जाता है।

भस्मासुर

भस्मासुर वही होता है जो संसार में अभिमानी होता है। आधुनिक काल में भौतिक विज्ञानवेत्ता नाना प्रकार के कंगन रूपी यत्र बना रहे हैं। अणु, महा-अणु और त्रिसेणु पर नये-नये आविष्कार कर रहे हैं। आत्मा के ज्ञान की ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। प्रकृति से नाना कणों को एकत्रित कर रहे हैं। मर्यादा का उल्लंघन करके एक-दूसरे को नष्ट करने की योजना बना रहे हैं।

प्रकृति को माता पार्वती और परमात्मा को शिव भी पुकारा जाता है। प्रकृति का दुरूपयोग होने से भयंकर अग्नि प्रदीप्त हो जाती है और विज्ञानवेत्ता उसी अग्नि में भस्म हो जाते हैं। भौतिक विज्ञानवेत्ता ही अभिमानी होने पर भस्मासुर कहलाता है।

शिवलिंग की कथा (दार्शनिक रूप)

शिव नाम परमात्मा का भी है और शिव नाम आत्मा का भी। शिव नाम औषधियों का भी होता है। शिव (परमात्मा) संसार का रचयिता है और स्वामी भी है। संसार को लिंग में धारण कर रहा है। पार्वती नाम प्रकृति का है। प्राण नाम लिंग का है। जब संसार में प्राण बिना प्रकृति के आता है तो वह त्राहिमाम्-त्राहिमाम् कर देता है। प्रकृति माता पार्वती आती है और वह लिंग रूपी प्राण को अपने में धारण कर लेती है। प्राण को प्रकृति धारण करती है तो सृष्टि प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रकार जो सृष्टि को प्रारम्भ करता है, उसका नाम शिव है। हे परमात्मन् शिव! तू माता पार्वती सहित आकर इस संसार का कल्याण कर।

शिव का नाद एवं डमरू

सृष्टि के प्रारम्भ में जब संसार का प्रादुर्भाव हुआ तो उस समय परमपिता परमात्मा शिव ने इस महत् रूपी डमरू अथवा नाद को बजाया। डमरू बजाने से प्रकृति अथवा माता पार्वती नृत्य करने लगी। इस प्रकार यह नाना रूपों में सृष्टि रची गई।

अक्षय क्षीर सागर, शेषनाग और नारद

आजकल एक लोक-कथा है कि विष्णु तो अक्षय-क्षीर सागर में रहता है। वहाँ नारद अपनी वीणा सहित गन्धर्व गान गा रहा है। लक्ष्मी चरणों में ओत-प्रोत है और विष्णु शेषनाग की शैय्या पर विराजमान है। पाँचों फनों वाला शेषनाग उसकी छाया कर रहा है।

वैदिक ऋषियों ने एक रूपान्तर लेकर इसकी विवेचना की थी जिसके अर्थ का आजकल अनर्थ किया जाता है।

वास्तविक स्वरूप

अक्षय-क्षीर-सागर तो ज्ञान के सागर को कहा जाता है। जिस मानव के पास ज्ञान होता है, उस मानव के पास चारों प्रकार की बुद्धि होती है-(१) बुद्धि, (२) मेधा, (३) ऋतम्भरा, (४) प्रज्ञा। ऐसा मानव प्रज्ञावी बनकर परमपिता परमात्मा का दिग्दर्शन करता है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों का समन्वय करता है। अपने को ब्रह्माण्ड में और ब्रह्माण्ड को अपने में दृष्टिपात करता है। इसका नाम अक्षय-क्षीर-सागर है। ऐसा मानव इस संसार-सागर से पार हो जाता है।

शेषनाग के पाँचों फन-(१) काम, (२) क्रोध, (३) लोभ, (४) मोह, (५) अहंकार कहलाते हैं। ऋषि आत्मा रूपी विष्णु इन विषयों को नीचे दबा करके, इनके ऊपर विश्राम करने लगता है। जब ये नीचे दब जाते हैं तो लक्ष्मी जो संसार को मोहने वाली है, उस ऋषि के चरणों की वन्दना करने लगती है। नारद अपनी वीणा को लेकर गान गाने लगता है। वैदिक साहित्य में नारद के बहुत से पर्यायवाची शब्द हैं। इस प्रकरण में नारद मन को माना है। यह चंचल रूपी वीणा को लेकर 'विष्णु रूपी' आत्मा के पास आ जाता है।

परमात्मा को भी नारद कहते हैं और नारद नाम के ऋषि भी समय-समय पर हुए हैं क्योंकि एक उपाधि (नारद) महाभारत काल तक चली आई है। जो मानव हर प्रकार की चंचलता को छोड़कर-काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार को अपने वश में कर लेता था, उसे नारद की उपाधि से विभूषित किया जाता था।

शुम्भ-निशुम्भ द्वारा वृष को छलने की आलंकारिक कथा

महर्षि याज्ञवल्क्य ने शतपथ ब्राह्मण नामक एक पोथी निर्माण करते हुए, दैत्यों और देवों की आलंकारिक कथा का वर्णन किया है। इस पुस्तक में शुम्भ-निशुम्भ और रक्तबीज तीन दैत्यों का वर्णन किया है।

विश्लेषण करते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य ने बताया है कि जब मानव की प्रवृत्ति देववत् बन जाती है, उस समय

मन भी पवित्र हो जाता है। दैत्यों काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार पर विजय करने वाली मानव की प्रवृत्तियां होती हैं।

वृष को मन कहा गया है। मन से पवित्रता में एक ध्वनि उत्पन्न होती है जिसको धर्म कहा जाता है। शुम्भ, निशुम्भ और रक्तबीज क्रमशः मान, अपमान और तृष्णा के हैं। अभिमान को विरोचन कहा गया है। मानव शरीर में यही देवासुर संग्राम है। हमें देववत् बनने की और धर्म को अपनाने की आवश्यकता है। जब बुद्धि को दैत्य छल लेते हैं तो ध्वनि अग्नि में परिणित हो जाती है। अग्नि वाणी को कहा गया है।

प्रभु ने जब यह जगत् रचा था तो यह मानव शरीर एक प्रकार की यज्ञ-वेदी रची थी। इसमें दस पात्र पाँच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां कहलाती हैं, जिनमें धर्म समाहित रहता है।

व्यापकता में धर्म होता है और संकीर्णता में अधर्म की प्रतिभा होती है। जितना मानव का हृदय विशाल होता है, व्यापक होता है, उतना ही मानव धर्म में परिणित होता रहता है। जितना संकीर्ण होता है, उतनी घृणा होती है। जितना बुद्धि का माध्यम सूक्ष्म होता है, उतना मानव के द्वार से धर्म दूर हो जाता है।

मानव को अपने इन्द्रियों को शोधन करने का प्रयास करना चाहिए। तप के बिना मानव इन्द्रियों का स्वामी नहीं बन सकता। प्रत्येक मानव और प्रत्येक देवकन्या को संसार में अपना जीवन उत्तम बनाना चाहिए। मन को शोधन करने की आवश्यकता है। मन की प्रतिभा अन्न से उत्पन्न हुआ करती है। इसी से स्मरण शक्ति आती है। स्मरण शक्ति ज्ञान का केन्द्र कहलाती है। यदि आज कोई मानव साधक बनना चाहता है, योगी बनना चाहता है तो उसे मन का शोधन करना अनिवार्य है।

२१ मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र

माता कौशल्या ने महर्षि तत्त्व मुनि के आश्रम में अध्ययन करते हुए यह संकल्प किया था कि वह ऐसे महान बालक को जन्म देगी, जो संसार से आततताईयों का नाश करके, धर्म की पताका फहराएगा। पुत्रेष्टि-यज्ञ के पश्चात् माता कौशल्या के गर्भ की स्थापना हो गई। गर्भ की स्थापना हो जाने के पश्चात् माता कौशल्या का यही नियम था कि वह स्वयं कला-कौशल करती और उसके द्वारा जो द्रव्य आता, उससे अन्न ग्रहण करके सन्तुष्ट रहती थी। राष्ट्र का अन्न ग्रहण नहीं करती थी। वह प्रतिदिन यज्ञ करती थी और तपस्या में लीन रहती थी।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र का जन्म होने के पश्चात् माता कौशल्या बालक को लोरियाँ देती रहती थी और वेदां का गान गाती और उनका पठन-पाठन चलता रहता। माता यज्ञ करती रहती और बालक दृष्टिपात करता रहता। माता कौशल्या ने तीन वर्ष के बाल्य राम को यज्ञ की सर्वत्र भूमिका वर्णित करा दी थी। तीन वर्ष की आयु का बालक वेदों की ध्वनि गाता था और समिधाओं का चयन करके यज्ञ करता था।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र ने महर्षि वशिष्ठ मुनि के आश्रम में तीस वर्षों तक अध्ययन किया। महर्षि वशिष्ठ ने शिक्षा अध्ययन के तीन भाग बनाये थे। सबसे प्रथम दस वर्षों में उन्हें वचन, प्रतिज्ञाओं और शिष्टाचार में परिणत कराया। द्वितीय दस वर्षों में विद्याध्ययन और धनुर्विद्या तथा अन्तिम दस वर्षों में विज्ञान की शिक्षा का अध्ययन। पृथ्वी वसुन्धरा कहलाती है। जो पृथ्वी वज्र के तुल्य हो, वह अहिल्या कहलाई जाती है। ऐसी भूमि में अन्न और वनस्पति उत्पन्न नहीं होती। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम एक समय अहिल्या पर अध्ययन कर रहे थे तो विज्ञानशाला में महर्षि भारद्वाज का पदार्पण हुआ।

महर्षि भारद्वाज ने एक ऐसा यन्त्र जाना था जो पृथ्वी की परतों में, चाहे वे जलाशयों अथवा समुद्र की तरंगों में भी क्यों न हों, दस-दस योजन तक यह भास करा देता था कि अमुक स्थान पर अमुक धातु है। उन्होंने राम को अपनी विज्ञानशाला में ले जाकर उस यन्त्र का दिग्दर्शन कराया। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम छः मास तक महर्षि वशिष्ठ के आश्रम को त्यागकर महर्षि भारद्वाज के यहाँ उस विद्या का अध्ययन करते रहे। वे मन और प्राण की सन्धि करके पृथ्वी के गर्भ में जाते थे और उसको भली-भांति जान लेते थे। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम अहिल्या का उद्धार करने वाले कहलाते थे।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम प्रतिदिन लगभग एक सहस्त्र गायत्री का जाप करते थे। वह जाप शब्दों में नहीं अपितु मस्तिष्क में करते थे। उनका जीवन ऋषि जीवन था और उसमें किसी प्रकार की त्रुटि न थी।

एक समय राम ने मार्ग में एक कीड़े को क्रीड़ा करते देखकर महर्षि वशिष्ठ से प्रश्न किया कि महाराज! इस कीड़े ने क्या कर्म किया था जो यह कीड़ा बना हुआ है? महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि जब से यह सृष्टि आरम्भ हुई, यह कीड़ा तीन समय इन्द्र बना है। इन्द्र उसको कहते हैं जो राजा एक सौ एक अश्वमेध यज्ञ कर लेता है। यह नाना प्रकार के पाप करके आज अधोगति को प्राप्त हुआ है और अब इसे कीड़े की योनि प्राप्त हो गई है।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का ३५ वर्ष की आयु में माता सीता के साथ विवाह संस्कार हुआ था। वे १२ कलाओं में पारंगत थे। महान और सदाचारी थे। उनके लिए राष्ट्र का ऐश्वर्य और पर्वतां की शैय्या दोनों समान थी।

एक समय अयोध्या के भयंकर वन में महर्षि विभाण्डक मुनि के आश्रम में एक सभा हुई, जिसकी अध्यक्षता महाराजा शिव ने की। नाना ऋषि सभा में विद्यमान थे। उस सभा में यह विचार विनिमय हुआ कि हम रावण के आततायीपन को कैसे समाप्त कर सकते हैं?

ऋषि-मुनियों ने महर्षि विश्वामित्र से यह कहा कि तुम राम और लक्ष्मण को धनुर्याग से महान बनाओ। महर्षि भारद्वाज ने कहा कि मेरी विज्ञानशाला में जितने भी वरूणास्त्र हैं, और इन्द्रास्त्र हैं, इस कोष को राम को

प्रदान कर सकता हूँ। महाराजा शिव ने कहा मैंने राजा रावण को भिन्न-भिन्न प्रकार की विज्ञान की शिक्षाएँ दी, परन्तु आज मेरा मन्तव्य बन गया है कि मैं रावण को कोई सहायता प्रदान नहीं करूँगा, क्योंकि उसका जीवन आततायी बन गया है। उसके राष्ट्र के प्रति मेरी कोई सहानुभूति नहीं है। सभा में यह विचार-विनिमय निश्चित हो गया कि राजा रावण साधारण मानव को त्रासित कर रहा है, वह समाप्त होना चाहिए।

महर्षि विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को अयोध्या से लाकर वन में धनुर्याग किया। जब याग समाप्त हो गया, तो राम और लक्ष्मण ने अस्त्र-शस्त्र लेकर ऋषि का स्वागत किया। इसके पश्चात् महर्षि विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण तीनां गमन कर, महर्षि भारद्वाज की विज्ञानशाला में जा पहुँचे। उन्होंने तीनों का स्वागत किया और महर्षि विश्वामित्र से कहा कि कहो भगवन्! मेरे लिए क्या सेवा है? आपकी क्या आज्ञा है? महर्षि विश्वामित्र ने कहा कि इन दोनों को योग और विज्ञान में पारंगत कीजिए। दोनों भाई छः मास तक उस विज्ञानशाला में योग और विज्ञान की शिक्षा लेते रहे।

राम को महान बनाने के लिए महापुरुषों ने बहुत यत्न किया। सम्प्रदाय और रूढ़ि वैसे ही समाप्त नहीं होते। उस काल में समाप्त होते हैं जब मानव त्याग और तपस्या में परिणत हो जाता है। राम और लक्ष्मण दोनों राजकुमारों ने रघुवंश को ऊँचा बनाने के लिए महर्षि भारद्वाज के आश्रम में सर्वविद्याएं प्राप्त की।

कुछ समय के पश्चात् राजा दशरथ महर्षि वशिष्ठ के द्वार पर पहुँचे और कहा कि मेरा चौथापन आ गया है, मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को यह राष्ट्र अर्पित करना चाहता हूँ।

इससे पूर्व अयोध्या में एक सभा हो गई थी, जिसमें सभी ऋषि-मुनियां ने यह निर्णय किया था, कि राम को वनों में जाना है और आततायियों को नष्ट करना है। अतः उसी दिन ऋषि-मुनि, ब्रह्मचारीगण और नाना विदुषी देवियां एकत्रित हुए। यह निर्णय होने लगा कि राज्य में ब्रह्मवेत्ताओं का निर्णय ऊँचा है या राजसभाओं का। यह निर्णय हुआ कि ब्रह्मवेत्ताओं का निर्णय ही ऊँचा होता है, क्योंकि उनके विचार तपे हुए होते हैं व सर्व अनुभव किया होता है।

अगला दिवस हुआ तो अयोध्या में मग्नता हो रही थी। राजगृहां में गान गाए जा रहे थे व सर्वत्र राष्ट्र में नाना प्रकार के आनन्द हो रहे थे। रात्रि में अभ्रेतु ऋषि महाराज, जो महर्षि वशिष्ठ के शिष्य कहलाते थे, मन्थरा के द्वार पर पहुंचे। मन्थरा अयोध्या राष्ट्र में गुप्तचर विभाग की अध्यक्षा थी। उन्होंने महर्षि वशिष्ठ द्वारा लिखित एक पत्र मन्थरा को दिया और कहा इसे महारानी केकैयी को दे देना। मन्थरा ने वह पत्र केकैयी को प्रेषित कर दिया। केकैयी पत्र पढ़कर राजतिलक का विरोध करने लगी और कोपभवन में विद्यमान हो गई।

राजा दशरथ को जब यह प्रतीत हुआ तो वे शोक भवन में पहुंचे। मध्यरात्रि थी, उन्होंने कहा कि देवी! तुम्हें यह क्या हो गया है? तुम्हारी बुद्धि कहाँ चली गई है? राम को वन देना तुम्हारे लिए शोभनीय नहीं है क्योंकि तुम राम की ममतामयी हो। महारानी केकैयी ने कहा कि जहां कर्त्तव्य की भावना आती है तो वहां ममता समाप्त हो जाती है। मेरी अन्तर्भावना यह है कि राम को वन में जाना चाहिए।

यह सर्व वार्त्ता राम को प्रतीत हो गई कि मुझे वन जाना है। राम तपे हुए थे। कुछ तो माता के गर्भस्थल में तपे, कुछ माता की लोरियों में तपे, कुछ महर्षि वशिष्ठ व महर्षि विश्वामित्र के आश्रमों में तपे और कुछ महर्षि भारद्वाज के द्वारा तपे थे। कौशल्या जी भी यह कहती रहती थी कि हे बालक! तूने मेरे गर्भस्थल से जन्म पाया है, तो तेरा कर्त्तव्य है कि तू महापुरुष बनना। तुझे दैत्यों का हनन करना है व महापुरुषों की सेवा करनी है। माता के हृदय के उद्गार बालक के अन्तःकरण में ओत-प्रोत हो गए थे।

राम का हृदय तपा हुआ था। राम जन्म-जन्मान्तरों से महापुरुष होते चले आए थे। वह दिव्य आत्मा वाले

कहलाते थे। राम ने कोप भवन में जाकर माता केकैयी के चरणों को स्पर्श किया। केकैयी ने कहा, धन्य हो पुत्र! आज तुम मेरे द्वार आये हो, मेरी इच्छा है कि तुम चौदह वर्ष के लिए वन चले जाओ। राम ने कहा कि मेरी तो यह कामना रहती है मातेश्वरी! कि मुझे माताओं की आज्ञा का पालन करना चाहिए। यदि मैं माता की आज्ञा का पालन नहीं करूंगा, तो मेरे पुत्र होने का अस्तित्व ही क्या है?

राम पिता के द्वार पर पहुँचे और कहा कि माता की आज्ञा का पालन करना तो पुत्र का कर्त्तव्य होता है। आप मुझे कर्त्तव्य से दूर क्यों ले जा रहे हो, आप शोकाकुल क्यों हो रहे हो व ममत्व में क्यां आ रहे हो? आप अपने मन में यह न स्वीकार करें कि 'राम' कौशल्या का ही पुत्र है। यदि माता केकैयी के गर्भ से मेरा जन्म हुआ होता तो भी माता केकैयी मुझे वन जाने के लिए विवश कर देती। राजा दशरथ राम को अपने हृदय से आलिंगन करते हुए बोले कि हे पुत्र! मेरा हृदय नहीं चाहता कि तुम वन जाओ। राम का हृदय मोहवश नहीं हुआ। वह एक रस रहने वाली महान आत्मा थी।

कौशल्या जी को महर्षि वशिष्ठ कुछ उच्चारण करके पहले ही अपने आश्रम में चले गए थे। केकैयी व सुमित्रा को प्रणाम करके राम कौशल्या के द्वार पर पहुँचे। माता कौशल्या अति हर्षित हो रही थी, क्योंकि वह नहीं चाहती थी कि राम राजसी विचारों में पनपता रहे। माता ने कहा कि हे पुत्र! जाओ, तुम चौदह वर्ष माता की आज्ञा का पालन करो। आज का दिवस मेरे लिए शोभनीय है। आज मेरा पुत्र शोक से रहित है व मग्न हो रहा है। राम, लक्ष्मण और सीता ने राजसी वस्त्र त्याग दिये और भगवां वस्त्र धारण करके अयोध्या को त्याग दिया। तीनों सरयू नदी को पार करके भयंकर वनों में पर्वतों की शैय्या बनाने वाले बन गए।

राम, लक्ष्मण और सीता सबसे पूर्व राजा निषाद के राष्ट्र में पहुँचे। निषाद ने कहा कि भगवन्! आप राज्य त्याग करके वन को क्यां जा रहे हो? उस समय राम ने कहा था कि हे निषाद! सूक्ष्म-सा जीवन है और इस जीवन को ऊँचा बनाने के लिए संसार में आए हैं। वन में रहेंगे तो कुछ पायेंगे और राष्ट्र में रहेंगे तो अपनी निज सम्पत्ति खो बैठेंगे। संसार में जो भी मानव ऊँचा बना है, दार्शनिक, आत्मिक और वेदपाठी बना है, वह वन में रहने से बना है। वन में रहूँगा तो मेरा जीवन महान बनेगा, यौगिक बनेगा और संसार से इस जीवन में कुछ कमाकर ले जाऊँगा। यदि मैं राजा बन जाता तो राष्ट्र बुद्धि हो जाती और न प्रतीत कितने पाप करने लग जाता? मैं वन को भोग कर, अपने कर्त्तव्य को पूर्ण करके और मर्यादा को बांध करके, जहां से आया हूँ वहीं चला जाऊंगा।

राजा दशरथ ने जिन भीलों, द्रविड़ों और अपंगों को त्याग दिया था, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने उन्हीं को अपनाया। उनकी सेना बनाई। वैदिक संस्कृति का प्रसार किया। आगे चले तो जो पिशाच और दुराचारी थे उन्हें नाना प्रकार के यन्त्रों से नष्ट करते चले गए। उसके बाद बाली को नष्ट किया, जो चारों वेदां का पंडित था, परन्तु संस्कृति नष्ट कर चुका था। बाली ने अपने बड़े विधाता की पत्नी को अपने गृह में प्रविष्ट कर लिया था। पवनपुत्र हनुमान और सुग्रीव को अपनाया। शबरी कुरतुक ऋषि की कन्या थी और विज्ञान में प्रवीण थी। उसने भारद्वाज ऋषि के आश्रम में शिक्षा अर्जित की थी। उसने, जितना विज्ञान का कोष था, सब राम को प्रदान कर दिया था। एक समय मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम भ्रमण करते हुए माता अनुसूया के आश्रम में पहुँचे। उसने सीता को उपदेश दिया और राम को एक यन्त्र दिया जिसका नाम 'जलायस्त्राण' था। यह यन्त्र अग्नि के परमाणुओं को निगल जाता था।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम से वन में महर्षि कागकृष्णा (काग भुशुण्ड) मिले जो आयुर्वेद के मर्म को जानते थे। वह अन्तरिक्ष में उड़ान उड़ना भी जानते थे। प्राणविद्या में पारंगत बाली पुत्र अंगद और वैज्ञानिक राजा जामवन्त से मिले। इस प्रकार अनेक ऋषि-मुनि और महापुरुषों को भी अपने साथ सम्मिलित कर लिया।

रावण की बहन का नाम सोमतिती (सूर्पणखा) था। वह दण्डक वन में भ्रमण करने के लिए आ पहुँची। उसने पहले राम और फिर लक्ष्मण के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा। दोनों ने कहा हम तुमसे संस्कार नहीं कर पाएंगे। जब ऐसा कहा तो उसने अपमान समझा, क्योंकि उसे अपने विधाता रावण और राष्ट्र का गर्व था। अपमान होने से उसने अपनी नाक स्वयं काट ली। उसने षडयन्त्र रचा ताकि मेरे कुटुम्ब वाले मेरे अपमान को जानकर दोनों भाइयों को नष्ट कर देंगे। वेदों में कुछ मन्त्र आते हैं जिनके अनुसार देवकन्या को जिस वस्तु की हठ हो जाए अथवा जो कार्य इसके लिए असम्भव हो जाए तो वह स्वतः ऐसे कार्य कर लेती है।

इसी अपमान का बदला लेने के लिए रावण सीता जी को पंचवटी से उठा ले गया। राम ने रावण को नष्ट करके उसके भाई विभीषण को लंका का राजा बनाया। रावण के पुत्र नारायन्तक जो सोमभूम (रूस) नाम के राष्ट्र में राज्य करते थे, उसे नष्ट करके अद्युत नाम के राजा को वहां का राज्य देकर वैदिक संस्कृति का प्रसार किया। उसके उपरान्त पातालपुरी पहुंचे, वहां रावण का पुत्र अहिरावण राज्य करता था, उसे नष्ट करके पातालपुरी (अमेरिका) का राज्य हनुमान के पुत्र मकरध्वज को दे दिया। रावण का पुत्र अक्षय कुमार रोहिणी (चीन) राष्ट्र पर राज्य करता था। उसे नष्ट किया। रावण का चतुर्थ पुत्र मेघनाथ जो त्रिपुरी (काबुल व गन्धार) पर राज्य करता था उसे भी नष्ट कर दिया। इस प्रकार वैदिक संस्कृति का सारे विश्व में प्रसार करके राम, लक्ष्मण, सीता और हनुमान अयोध्या लौट आए।

अयोध्या में आकर राम महर्षि वशिष्ठ के चरणों में ओत-प्रोत हो गए। वहीं महर्षि विश्वामित्र भी आ गए। दोनों महापुरुषों के चरणों को छू कर राम ने कहा, "भगवन! अब आप मुझे कोई ऐसा निश्चित मार्ग दीजिए जिससे मैं अपने राष्ट्र को ऊँचा बना सकूँ। अपने राष्ट्र को सदाचार के मार्ग पर ले जा सकूँ।" ऋषियों ने राम को उत्तम-उत्तम शिक्षाएं दी।

राम का दीपावली के दिन राज्याभिषेक किया गया। उन्होंने राम-राज्य स्थापित करने के लिए राष्ट्रीय नियम बनाये। सबसे प्रथम नियम बनाया कि प्रत्येक गृह में यज्ञ होना चाहिए और सुगन्धि होनी चाहिए। प्रत्येक मानव में सदाचार और मानवता होनी चाहिए। द्वितीय नियम यह बनाया कि राष्ट्र में किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं होनी चाहिए। किसी प्रकार का अपराध नहीं होना चाहिए।

राम के आदेश पर गर्भवती सीता को महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में भेजा गया, जो नदी तट पर था। स्वच्छ वायुमण्डल में विवेकी बालक लव का जन्म हुआ था। कुश नाम का बालक सीता जी को आश्रम के निकट कुशा के आसन पर रखा हुआ मिला था। दोनों बालक आश्रम में रहते हुए आयुर्वेद और अस्त्र-शस्त्रों में पारंगत हो गए।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने अश्वमेध यज्ञ करने के लिए, प्रचलन के अनुसार घोड़ा छोड़ दिया। घोड़े को किसी ने अंकित नहीं किया, परन्तु लव और कुश ने पकड़ लिया। वीर हनुमान और लक्ष्मण दोनों भ्रमण करते हुए आश्रम में आए। दोनों ने माता सीता से अयोध्या चलने की प्रार्थना की। दोनों बालक और माता सीता अयोध्या आ गए। सब ने राम के चरणों को स्पर्श किया। अश्वमेध यज्ञ में राम और सीता दोनों यजमान बने। यज्ञ समाप्ति के पश्चात् सातवें दिवस माता सीता ने प्राणायाम करके शरीर त्याग दिया। उसके सात दिवस पश्चात् मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने भी प्राणायाम करके अपने शरीर को त्याग दिया।

२२अहिल्या की वास्तविक व्याख्या

त्रेता काल में वशिष्ठ मुनि के आश्रम में विज्ञानशाला थी। इसमें माता अरून्धती और महर्षि वशिष्ठ दोनों अध्ययन करते थे। लोक-लोकान्तरों के ऊपर उनका विशेष अध्ययन रहता था। वे पृथ्वी के ऊपर भी अनुसन्धान करते रहते थे। पृथ्वी के कणों को घ्राण व सुगन्ध के द्वारा राम को यह निर्णय कराते थे कि पृथ्वी की निचली परतों में क्या-क्या खनिज और खाद्य पदार्थ हो सकते हैं।

पृथ्वी को वसुन्धरा व अहिल्या भी कहा जाता है। ऐसी भूमि जिसमें अन्नादि उत्पन्न न होता हो, वनस्पतियां उत्पन्न न होती हों और वज्र के तुल्य हो वैसी भूमि अहिल्या कहलाती है।

अहिल्या के नाना पर्यायवाची शब्द होते हैं जैसे पृथ्वी, रात्रि, माता, आत्मा और वज्र तुल्य भूमि आदि। भगवान राम छः मास तक महर्षि भारद्वाज के आश्रम में अहिल्या विद्या का अध्ययन करते रहे। महर्षि भारद्वाज ने एक यन्त्र ऐसा जाना था जो पृथ्वी की परतों में, चाहे वह जलाशयों में या समुद्रों में भी क्यों न हो, दस-दस योजन तक यह भास करा देता था कि अमुक स्थान पर अमुक धातु है।

भगवान् राम ने वनवास जाते हुए अयोध्या की भूमि को वज्र तुल्य देखा। उसमें अन्न उत्पन्न नहीं किया जा रहा था। ऐसी भूमि को अहिल्या कहा जाता है। अयोध्या के निकट ही निषाद का राज्य था। राम ने निषाद राज से कहा कि इस भूमि में बीज स्थापन करके अन्न उत्पन्न किया जाए। इस प्रकार उस अहिल्या रूपी पृथ्वी का राम द्वारा उद्धार हो गया।

निषाद ने कहा कि आप राज्य को त्यागकर वन क्यों जा रहे हो? उस समय राम ने कहा था कि हे निषाद! सूक्ष्म-सा जीवन है, इस जीवन को ऊँचा बनाने संसार में आए हैं। अगर राजा बन जाता तो प्रतीत नहीं बुद्धि राजसिक या तामसिक बन जाती। वन में रहेंगे तो कुछ पायेंगे। संसार में जिस मानव ने ख्याति पाई है, जो ऊँचा बना है, दार्शनिक बना है, आत्मिक या वेदपाठी बना है, वह वन में रहने से बना है। मैं वन में रहूंगा तो महान और यौगिक बनूंगा। संसार से इस जीवन में कुछ कमाकर ले जाऊंगा।

अपने कर्त्तव्य को पूर्ण करके, मर्यादा बांधकर, मैं वहीं चला जाऊंगा जहाँ से आया हूँ। यह मेरा कर्त्तव्य है कि माता-पिता की आज्ञा का मुझे पालन करना चाहिए।

अहिल्या की आलंकारिक कथा

अहिल्या को प्रकृति, रात्रि, पृथ्वी आदि के नामों से भी पुकारा जाता है। गौतम नाम चन्द्रमा का है और इन्द्र सूर्य को कहा जाता है। गौतम नाम परमात्मा का भी माना जाता है।

अलंकार में परमात्मा अहिल्या (प्रकृति) का पति है। रात्रि को भी अहिल्या और चन्द्रमा को गौतम कहा गया है। रात्रि रूपी अहिल्या अपने अन्धकार रूपी श्रृंगार को चन्द्रमा रूपी गौतम को समर्पित कर देती है। जब इस अहिल्या को छला गया तो गौतम ने इन्द्र (सूर्य) को शाप दिया कि हे इन्द्र! तुम सहस्रों भगों वाले बन जाओ! सूर्य की किरणों को भग कहा जाता है।

प्रातःकाल होता है, उस समय सूर्य रूपी इन्द्र अपनी किरणों से उस अहिल्या (रात्रि) को अपने में रमण कर लेता है। अहिल्या रूपी रात्रि, इन्द्र रूपी सूर्य में समाहित हो जाती है। रात्रि के पृथक होने पर इन्द्र का प्रभाव सूर्य पर पड़ता है और यह चन्द्रमा गदला पड़ जाता है।

इस प्रकार बुद्धिमानों का कर्त्तव्य है कि आलंकारिक वाक्यों को भली प्रकार जानें।

२३ माता सीता

एक समय राजा जनक के राष्ट्र में अकाल पड़ गया। नाना ऋषियों को निमन्त्रण दिया गया। अनेक ऋषि उनके आंगन में आये। राजा जनक ने कहा कि मेरी प्रजा अन्नाभाव से दुखी है, कुछ ऐसा यत्न करो ताकि अकाल समाप्त हो जाए। ऋषियों ने कहा कि आप दो गो के बछड़े लीजिए और अपनी वाटिका में जाकर स्वर्ण का हल चलाइये, ताकि वृष्टि याग हेतु स्थान सुरम्य बने। राजा जनक ने ऐसा ही किया, वृष्टि हो गई। संयोग वश जैसे ही राजा ने हल चलाया, वृष्टि हुई और उधर राजा जनक के घर कन्या का जन्म हुआ।

जब राजा को कन्या उत्पन्न होने का समाचार मिला तो वह बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने ऋषि-मुनियों से नाम करण संस्कार का आग्रह किया। ऋषि-मुनियों ने कहा कि इसका 'सीता' नाम नियुक्त कर दो, क्योंकि व्याकरण की दृष्टि में 'सी' नाम हल की फाली का व 'ता' नाम वृष्टि का है। हल चलाने के साथ ही वृष्टि हुई है व वृष्टि के होते ही पुत्री उत्पन्न हुई है। दोनों के मिलन समय जन्म हुआ है तो उस समय उसका नाम सीता नियुक्त कर दिया गया।

सीता राज-पुरोहित स्वाति मुनि महाराज के द्वारा वेदों व धनुर्विद्या का अध्ययन करती थी। उसका विवाह संस्कार भगवान राम के साथ हुआ। माता कौशल्या की आज्ञा लेकर राम के साथ वन में गई। लक्ष्मण भी साथ गया। एक समय रात्रि छा गई। राम व लक्ष्मण पर्वतों की शैय्या बनाए विश्राम कर रहे थे। सीता जाग रही थी। वहां पर अचानक ही सिंह आ गया। सीता ने सोचा कि मैं राम की पत्नी हूँ, उन्हें जागरूक करना मेरा धर्म नहीं है। यदि लक्ष्मण को जागरूक किया तो वह पुत्र के तुल्य है। उसने विचारा जो गाढ़ निद्रा में परिणत हो, उसे जागरूक नहीं करना चाहिए। अतः सीता देवत्व की भावना से कहती है कि हे मृगराज! यह मैं जानती हूँ कि हम तुम्हारे गृह में विद्यमान है। यह जो वन है, यह तेरा गृह है, परन्तु यह भी तेरा कर्त्तव्य नहीं कि तू अपने गृह में आये अतिथियों को ही अपना आहार बना ले, यह तेरा सिंहपन नहीं है।

इस प्रकार सीता ने हृदय, इन्द्रियों और मन के समन्वय के साथ तन्मयी प्रार्थना की, वह मृगराज के अन्तःकरण को प्रभावित कर गई। सिंहराज ने उस मार्ग को त्यागकर दूसरे मार्ग को अपना लिया। माता सीता बहुत संकल्पमयी थी।

लक्ष्मण माता सीता के चरणों को स्पर्श करने वाला यथार्थ आर्य था। उसके जीवन की इतनी महत्ता मिलती है कि उसकी दृष्टि किसी और स्थल पर नहीं जाती थी। जब पंचवटी पर रावण आ पहुंचा तो लक्ष्मण ने पंचवटी के इर्दगिर्द (चारों ओर) एक रेखा का निर्माण किया और सीता से यह कहा कि हे मातेश्वरी! इस रेखा से तुम बाहर नहीं होना। कितना विज्ञान था उस समय का? उस विज्ञान की हम कल्पना भी नहीं कर पाते। जो आंगन में रहे, वह भस्म न होता हो परन्तु बाहर से आने वाला प्राणी उस रेखा के अन्तर्गत आते ही भस्म हो जाता था, उसमें इतनी विशालता थी। इस शृंगकेतु नाम की रेखा को श्रीकृष्ण जी भी जानते थे।

रावण अपनी बहन सोमतिती के अपमान का बदला लेने के लिए माता सीता को लंका ले गया। रावण का राष्ट्र अपना, प्रजा अपनी, परन्तु सीता को अपना नहीं बना सके, क्योंकि माता सीता महान चरित्रवान थी। उसका हृदय वैदिकता से गुथा हुआ था। वह ऐसा सुन्दर गुथा हुआ था कि रावण उसे छू भी नहीं सकता था। माता सीता ने कहा था कि हे रावण! मैं पतिव्रता हूँ और मेरा एक पति है। यदि तुमने पाप से मेरे शरीर को छू भी लिया तो अनिष्ट हो जायेगा। रावण में इतनी प्रबलता नहीं थी कि वह माता सीता को छू भी सके। उसके हृदय में कैसी महत्ता थी?

रावण पर विजय करके राम, लक्ष्मण और सीता अयोध्या आ गए। दीपावली के दिन अयोध्या में एक भव्य

सभा हुई जिसमें राम का राज्याभिषेक किया गया। लगभग एक वर्ष पश्चात् जब राम ने यह विचारा कि मेरे गृह में विवेकी बालक का जन्म हो तो उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि गर्भवती सीता को महर्षि वाल्मीकि आश्रम में छोड़ आओ, क्योंकि वहां नदी का तट है, वहीं स्वच्छ वायुमण्डल में बालक का जन्म होगा तो राष्ट्र का कल्याण होगा। लक्ष्मण सीता को लेकर वाल्मीकि आश्रम में गया। वाल्मीकि ऋषि आयुर्वेद के महान पण्डित थे और सीता को आयुर्वेद की औषधियों का पान कराते रहते थे।

वाल्मीकि आश्रम में सीता के गर्भ से एक बालक का जन्म हुआ। बालक जन्म के पश्चात् बड़े आनन्द से ऋषि आश्रम में रहता था। ऋषि उस बालक को लव के नाम से पुकारने लगे। कुछ समय के पश्चात् एक दिवस जब सीता जल लेने नदी तट पर गई तो उसे आश्रम के निकट एक बालक कुशा पर रखा हुआ मिला। इस बालक का नाम कुश रख दिया गया। यह बालक महर्षि सुरन्धित की कन्या सुमित्रा और ब्रह्मचारी ब्रहित की सन्तान था। सुमित्रा ने बालक को कुशा के आसन पर विराजमान करके वाल्मीकि आश्रम के निकट त्याग दिया था।

माता सीता ने दोनों पुत्रों का पालन किया। उसने कुश को भी कण्ठ लगाया। वह एक लोरी लव को और एक कुश को देने लगी। ये दोनों बालक ऋषि की सेवा करते थे। महर्षि वाल्मीकि ने दोनों को अस्त्र-शस्त्र और आयुर्वेद की शिक्षा में पारंगत कर दिया। सीता स्वयं भी आयुर्वेद तथा धनुर्विद्या के मर्म को जानने वाली विदुषी थी।

वाल्मीकि आश्रम में दोनों बालक युवा हो गए। जब महाराजा राम ने अश्वमेध यज्ञ करने के लिए घोड़ा छोड़ा तो उसको किसी ने नहीं पकड़ा, परन्तु उन दोनों पुत्रों ने पकड़ लिया। माता सीता ने कहा कि यह अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा है, मेरे स्वामी का यह अश्व है और महर्षि वाल्मीकि के लिए निमन्त्रण आया है। इतने में भगवान राम के महामन्त्री हनुमान और लक्ष्मण दोनों भ्रमण करते हुए महर्षि के आश्रम में आ गए।

दोनों ने माता सीता से प्रार्थना की कि हे मां! अब तू राष्ट्रगृह में चल। तू राजलक्ष्मी है। हमारा उद्देश्य पूर्ण हो गया है क्योंकि जब यह बालक तुम्हारे गर्भ में था तो तुम्हारे हृदय का एक भाग रूग्ण हो गया था। महर्षि वाल्मीकि आश्रम में तुम्हारा रोग शान्त करने के लिए छोड़ा गया था जो अब पूर्ण रूपेण शान्त हो गया है। अब तू राष्ट्रगृह में प्रविष्ट हो। माता सीता ने इन वाक्यों को स्वीकार कर लिया।

महामन्त्री हनुमान, लक्ष्मण, माता सीता और दोनों बालक अयोध्या आ गए। सीता ने राम के चरणों को स्पर्श किया। अश्वमेध यज्ञ में राम और सीता दोनों यज्ञमान बने और यज्ञ पूर्ण हो गया।

अश्वमेध यज्ञ पूर्ण होने के पश्चात् माता सीता ने भगवान राम से कहा "हे भगवान! अब तुम्हारा यज्ञ पूर्ण हो गया है। मैंने पुत्रेष्टि यज्ञ भी पूर्ण कर लिया। अब मुझे यह भान हो रहा है कि आज से सातवें दिवस मेरी मृत्यु हो जायेगी।" उसने यज्ञ की पूर्णाहुति के पश्चात् सातवें दिन शरीर त्याग दिया। उसके सातवें दिवस पश्चात् भगवान राम ने शरीर त्याग दिया। उन्होंने अपने-अपने शरीर को स्थूलता से प्राणायाम के द्वारा त्याग दिया।

विचार विनिमय यह कि सीता पृथ्वी में समाहित नहीं हुई। दोनों धर्मात्मा थे। उन्हें पृथ्वी में समाहित होने की क्या आवश्यकता थी? पृथ्वी में समाहित होना आत्महत्या मानी जाती है और शास्त्रों में आत्महत्या पाप है।

- ☞ **जो सत्य का पालन करता है, उसके समीप सात्विक प्राणी आने प्रारम्भ हो जाते हैं।**
- ☞ **प्राण-शक्ति के सूक्ष्म हो जाने पर मानव रूग्ण हो जाता है।**
- ☞ **हिंसा ही मानव की मृत्यु है और रक्षा ही मानव का जीवन है।**
- ☞ **जब स्वार्थवाद नहीं रहता तो मानव एक-दूसरे से स्नेह करने लगता है।**
- ☞ **स्वार्थवाद में ही कठोरता आती है।**

- ☞ प्रत्येक मानव को याज्ञिक बनना चाहिए।
- ☞ राष्ट्र को ऊँचा बनाने के लिए रूढ़ियों का त्याग होना चाहिए।
- ☞ परमात्मा एक है, आत्मा अनेक।
- ☞ मन तभी पवित्र बन सकता है जब अन्न पवित्र होगा।
- ☞ मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में लाने का नाम साधना है।
- ☞ अन्न-दोष से साधना नष्ट हो जाती है।
- ☞ मन की गति स्थिर हुए बिना योग सिद्ध नहीं हो सकता।

२४ महात्मा भरत

राम के वन जाने के पश्चात् भरत अयोध्या में आते हैं। कैकेयी ने भरत से कहा कि पुत्र, राष्ट्रीय स्थली पर विराजमान हो जाओ। भरत ने कहा, "माता, यह तो अधिकार मेरे विधाता राम का है, मेरा कोई अधिकार नहीं है। मैं इसके योग्य नहीं हूँ। राम ही इसके योग्य हैं।" भरत, राम से मिलने भयंकर वन में पहुँचे। राम से प्रार्थना की और उनकी चरण पादुका लाकर राष्ट्र का पालन करने लगे।

विधाता हो तो ऐसा हो। यह आदर्श हमारे समीप है। भरत एक कन्दरा (गुफा) में रहते थे। उसी में विश्राम करते थे। एक समय महर्षि शुषेचा भरत के आश्रम में पहुँचे। उस समय ऋषि ने कहा कि तुम पृथ्वी के गर्भ में क्यां रहते हो? भरत ने कहा कि महाराज! मैं इसलिए रहता हूँ कि पृथ्वी का आसन मेरे विधाता राम का है और मैं राम के निचले भाग में रहना चाहता हूँ। मैं राम के समान आसन नहीं बनाना चाहता।

जब राम लंका को विजय करके अपने कक्ष में अयोध्या में विराजमान हो गए तो उस समय महात्मा भरत उनके समीप आये। भरत ने राम से यह प्रार्थना की, "हे प्रभु! मुझे बहुत समय हो गया है, मैं राज्य में रहता हूँ और प्रजा को अनुशासन में लाना चाहता हूँ। मैं इतना ज्ञानी और तपस्वी नहीं हूँ कि प्रजा में मर्यादा और ज्ञान ला सकूँ। मेरी इच्छा है कि आप अयोध्या के राज्य को अपनाइये।"

परन्तु राम ने कहा, "हे भरत! तुम्हें यह प्रतीत है कि मैं अभी राष्ट्र के सुयोग्य नहीं हूँ। संग्राम के बाद भी संग्राम की प्रवृत्ति मन में बनी रहती है। अभी मुझे राष्ट्र का अधिकार नहीं है। राष्ट्र के पालन में राजा सत्तोगुण प्रधान होना चाहिये। जब तक मेरे मन-मस्तिष्क में रजोगुण की प्रधानता रहेगी, तब तक यह अधिकार मुझे नहीं है।"

सभी ऋषि-मुनियां को भरत ने निमन्त्रित किया। महाराजा शिव की अध्यक्षता में सभा हुई। सभा में भरत ने अपने विचार रखे। राम ने अपने विचार रखे और कहा कि यदि राजा के साथ तपस्या नहीं है, रजोगुण व तमोगुण आ गया है तो वह राजा, राजा नहीं रहता। मैं तपस्या करना चाहता हूँ। मेरे पूर्वज सभी तपस्वी रहे हैं। यह निर्णय लिया गया कि राम को तपस्वी बनना चाहिए। तपस्वी ही राज्य का पालन कर सकता है।

महात्मा भरत से कहा गया-"भरत! तुम क्या चाहते हो?" भरत ने कहा कि मैं क्या कह सकता हूँ। मेरा तो यही कर्त्तव्य है कि मैं उस गुफा में पुनः से विश्राम करूँ। प्रजा अपने कर्त्तव्य का पालन करती रहेगी। राम वन को चले गए और वन में जाकर तपस्या करने लगे। पत्र-पुष्पों और वनस्पतियां का रस बना करके, अग्नि में तपा करके स्वतः पान करते थे। पान करते-करते उनका रजोगुण समाप्त हो गया। तमोगुण की प्रवृत्तियाँ आने का तो प्रश्न ही नहीं होता। तपस्या काल में अनेक ऋषि-मुनियों से विचार-विमर्श होता रहता था।

भगवान राम ने १२ वर्ष तक तपस्या की। तपस्या के पश्चात् भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और हनुमान, चारां राम के समीप पहुँचे। भरत ने कहा कि अब आपका अनुष्ठान भी समाप्त हो गया है। मेरी इच्छा यह है कि अब ऐसा कोई दिवस नियुक्त किया जाए जिस दिवस आपका राज्याभिषेक हो जाए और राष्ट्र की परम्परा सुचारू रूप से प्रारम्भ हो।

दीपावली के २ दिवस रह गये थे। उस समय भरत ने यह कहा था कि कृष्ण पक्ष है, दीपावली आने वाली है और शुक्ल पक्ष में आपका राज्याभिषेक होगा। राम ने यह स्वीकार कर लिया। एक सभा एकत्रित की गई जिसमें नाना ऋषिवर और सर्व भू-मण्डल के राजा, एक सूचना के अनुसार, अपने-अपने यानों में बैठकर अयोध्या में आ पहुँचे।

दीपावली के दिन एक यज्ञ किया गया। महर्षि वशिष्ठ, महर्षि लोमश और भी आदि ऋषियों ने राम का

राजतिलक किया। राम ने कहा कि, "मैं अब राष्ट्र का अधिकारी बन गया हूँ। मेरे में गायत्री माता का प्रभाव आ गया है, वेद-ध्वनि मेरे में ध्वनित हो गई है और मुझे विवेक हो गया है। राष्ट्र में अनुशासन तब रह सकता है जबकि मानव चरित्रवान बनेगा। राष्ट्र में चरित्र और मानवीयता होनी चाहिए।"

उसके पश्चात् सभा का विसर्जन हो गया। सब ऋषि-मुनियां ने अपने-अपने आसन को प्रस्थान किया।

२५ तपस्विनी माता अंजना

अंजना महाराजा महीवृत केतु की कन्या थी। उसका विवाह महाराजा महेन्द्र के पुत्र पवन के साथ हुआ था। विवाह के पश्चात् अंजना अपनी सहेलियों के साथ बैठी थी, तो किसी सहेली ने पवन के प्रति हंसी-हंसी में कुछ अपशब्द कह दिये। पवन ने समझा कि ये शब्द अंजना ने कहे हैं। उसने अंजना को अपने राष्ट्र में ले जाकर अपने से अलग महल में छोड़ दिया। उसने घोषणा करके अंजना को दुहाग दे दिया। दुहागिन अंजना ने अपने आपको स्वाध्याय एवं तपस्या में लीन कर लिया। धीरे-धीरे १२ वर्ष व्यतीत हो गए।

वरूण (राज्यभिषेक के पश्चात् राजा रावण) ने लंका के राजा कुबेर को विजय करने के लिए राजकुमार पवन को सहायता के लिए निमन्त्रण दिया। पवन ने अपनी सेना सहित गमन किया और जाते हुए सायंकाल होने पर मार्ग में एक नदी पर पड़ाव डाल दिया। रात्रिकाल में दो पक्षियों (चकवा-चकवी) को आवाजें करते सुन कर राजा पवन के हृदय में व्याकुलता हो गई। उन्होंने अपने मन्त्री से पूछा कि ये पक्षी आवाजें क्यों कर रहे हैं? मन्त्री ने कहा, "महाराज! परमात्मा के नियमानुसार ये दोनों पक्षी दिवस-भर एक साथ रहते हैं, परन्तु जब रात्रि आती है तो ये पक्षी एक-दूसरे से दूर रहते हैं। दूर रहने के कारण ये व्याकुल हैं।" महाराजा पवन के हृदय में विचार आया कि मैंने अपनी पत्नी को १२ वर्ष से त्याग रखा है। पवन सोच-सोचकर व्याकुल हो गया। व्याकुलता का परिणाम यह हुआ कि उसी समय रात्रिकाल में विमान पर विराजमान होकर अंजना के द्वार पर जा पहुंचा।

अंजना ने अपने पतिदेव को देखकर उसके चरणों को स्पर्श किया और कहा, "आइए भगवन! मैं तो हमेशा आपका गुणगान गाती रहती हूँ। आपने मुझे दुहागिन बना दिया, परन्तु उसके पश्चात् भी मैं आपका अनिष्ट नहीं चाहती हूँ।" पवन ने कहा, "देवी! तुम धन्य हो। मैं वरूण की विजय की सहायता के लिए, अपनी सेना सहित यहां से गमन कर गया था। मार्ग में से तुम्हारे लिए आया हूँ।" अंजना ने कहा, "मुझे तो आपने दुहागिन बना रखा है। अपने माता-पिता की आज्ञा लेकर यहां आना चाहिए था। यदि आपको संग्राम में से आने में देर हो गई तो आपके माता-पिता मुझे इस गृह से निकाल देंगे।" पवन ने कहा कि मैं शीघ्र ही विजय प्राप्त करके अपने राष्ट्र में आ जाऊँगा। रात्रि में अंजना के साथ रहकर, प्रातः काल अपनी मुद्रिका का परिवर्तन करके पवन ने वहां से गमन किया और अपनी सेना के पास जा पहुँचा। पवन को लंका में कई महीने लग गए।

सन्तान को माता ही ऊंचा बना सकती है ओर कोई नहीं बना सकता। माता तपस्विनी होती है तो माता का गर्भाशय भी ऊंचा बन जाता है। जब हनुमान जी अंजना के गर्भाशय में थे तो माता कहा करती कि बालक तू संसार में वीर व महान बनना। पवन के माता-पिता ने अंजना को गर्भवती देखकर कहा कि इसने हमारा गृह कलंकित कर दिया है। राजा महेन्द्र ने कहा कि राष्ट्र का नियम है कि यदि कोई भी कन्या इस प्रकार कलंकिनी हो जाती है तो उसका काला मुख, काला सारथी, काले वस्त्र, काले घोड़े और काले ही रथ पर विद्यमान करके भयंकर वन में त्याग दिया जाता है या वह जहां कहती है, वहां त्यागा जाता है। अंजना ने प्रार्थना की और कहा, "इसमें मेरा दोष नहीं है। मैं दोष की पात्र नहीं हूँ। आपके पुत्र (पवन) संग्राम करने चले गए थे, परन्तु मार्ग में से वापिस लौटकर एक रात्रि मेरे पास विश्राम किया था।" पवन की माता जी ने ये वाक्य स्वीकार नहीं किये। अंजना ने पवन की दी हुई मुद्रिका भी दिखाई, परन्तु माता-पिता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। परिणाम यह हुआ कि अंजना ने कहा कि मेरे माता-पिता के गृह में मुझे छोड़ दीजिए।

काला सारथी अंजना को लेकर उसके माता-पिता के गृह में छोड़ने गया। जब राजा महीवृत केतु को पूर्ण घटनाक्रम का पता लगा तो उसने कह दिया कि अंजना को भयंकर वन में त्याग दो। इस प्रकार सारथी अंजना को भयंकर वन में त्याग कर रथ को अपने राष्ट्र में ले आया।

अंजना ने परमात्मा से प्रार्थना करते हुए कहा, "हे परमात्मा! यह क्या हो गया? मैं पापिनी तो नहीं थी, परन्तु पता नहीं कौन-सा भोग मेरे सामने आ गया? मेरे हृदय में कोई अपवित्रता भी नहीं थी। मैं अपने जीवन में सदैव शुद्ध और पवित्र रही हूँ। मेरा ब्रह्मचर्य नितान्त रहा है और ब्रह्मचर्य की गति भी ऊर्ध्व रही है।"

भयंकर वन में व्याकुल होती हुई अंजना एक कन्दरा में विद्यमान हो गई। सर्द ऋतु का काल था और सर्द वायु चल रही थी। थकी हुई अंजना निन्द्रा में तल्लीन हो गई। अगले दिन भयंकर वन की कन्दरा में हनुमान का जन्म हुआ। अंजना व्याकुल होकर कहने लगी कि हे बाल्य! तेरा जन्म राष्ट्र गृह में होता तो न प्रतीत क्या-क्या दान दिये जाते? तेरा कैसा भाग्य है? इस कजली वन में तुझे क्या पान करा सकती हूँ?

रात्रि होने पर अंजना व्याकुल होने लगी। इतने में अंजना के मामा ब्रीहिवृण ने अपने पुष्प विमान को उसी स्थली पर स्थिर किया। वे पर्वत माला पर भ्रमण कर रहे थे। उन्होंने सोचा कि मध्य रात्रि में इस भयंकर वन में कौन व्याकुल हो रहा है? कोई स्पष्ट आवाज न सुनकर उसने उच्च स्वर में कहा, "अरे! कौन है?" अंजना ने कहा, "भगवन्! मैं हूँ। मेरा नाम अंजना है।" राजा ब्रीहिवृण ने अंजना को पहचान कर कन्दरा से बाहर किया और कहा हे पुत्री! मैं तुम्हें अपने गृह लिए जा रहा हूँ।

जब विमान उड़ा तो हनुमान जी अंजना के हाथों से फिसलकर (छूट कर) विमान से नीचे गिर गए। अंजना ने कहा, "हे मामा! मेरा पुत्र विमान से नीचे गिर गया है। वह तो समाप्त हो गया होगा।" विमान को नीचे उतार कर देखा तो हनुमान जी के मुख पर चोट लग गई थी। इसी कारण हनुमान जी की मुखाकृति कुछ बिगड़ गई थी। विमान में पुनः बैठकर अंजना अपने पुत्र सहित अपने मामा के राष्ट्र 'नौतनपुरी' में आ गई।

उधर महाराजा पवन कुबेर को विजय करके अपने राष्ट्र में पहुँचे तो अपनी माता जी से पूछा कि अंजना कहाँ है? माता जी ने कहा, "हे पुत्र! वह कलंकिनी हो गई थी। हमने उसे गृह से निकाल दिया और उसके पिता ने भी उसे स्वीकार नहीं किया था। अतः उसे कजली वन में त्याग दिया गया।" पवन ने कहा, हे मातेश्वरी! यह तो महापाप हो गया है। अंजना निर्दोष है। पवन ने संकल्प कर लिया कि यदि अंजना मुझे मिल गई तो वापिस घर आ जाऊँगा अन्यथा मैं भी अपने प्राणों को कजली वन में त्याग दूँगा। यह संकल्प करके वह राष्ट्र छोड़ कर चला गया।

अंजना ने अपने मामा से कहा, "हे मामा! मुझे मेरे पति के गृह में पहुँचा दीजिए। मैं वहीं सुशोभित होऊँगी। मेरे पति भी संग्राम से वापिस आ गये होंगे। राजा ब्रीहिवृण अंजना और बालक हनुमान को लेकर पहुँचे तो सूचना मिली कि राजा पवन अंजना की तलाश में कजली वन में जा पहुँचे

हैं। अंजना भी हनुमान को लेकर अपने मामा के साथ कजली वन में जा पहुँची।

राजा पवन भ्रमण करते हुए उसी स्थान पर जा पहुँचे जहाँ हनुमान का जन्म हुआ था। वहाँ उन्हें अंजना को दी हुई मुद्रिका प्राप्त हो गई। उन्होंने सोचा अंजना तो नष्ट हो गई होगी। अतः अंजना के वियोग में समिधाएं एकत्रित करके प्राणों को त्यागने की तैयारी कर ली। अग्न्याधान करते ही जब शवयात्रा में परिणत होने लगे, इतने में ही अंजना भी जा पहुँची।

अंजना ने कहा, हे देव! यह क्या कर रहे हो? राजा पवन ने कहा, तुम्हारे वियोग में प्राणों का अन्त कर रहा था। दोनों का मिलन हुआ। हनुमान जी को लेकर दोनां कजली वन से अपने राष्ट्र में गए।

अंजना तपस्विनी थी। तपस्विनी के गर्भ में तपस्वी पुत्र का जन्म होता है। तप ही मानव को ऊँचा बनाता है। माताएं जब तपस्विनी बन जाती हैं तो यह समाज ऊँचा बन जाता है। यह राष्ट्र और संसार ऊँचा बन जाता है।

☞ **मस्तिष्क का सम्बन्ध अन्तःकरण के संस्कारों तथा प्रवृत्तियों से होता है।**

- ☞ आत्मा के लिए संसार रचा जाता है, रचने वाला प्रभु है और रची जाने वाली प्रकृति है।
- ☞ त्रैतवाद ही यथार्थ सिद्धान्त है।
- ☞ सशक्त पवित्र आत्म-चेतना से पशुओं का आत्मा भी प्रभावित होता है।
- ☞ जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है किन्तु भोगों में परतन्त्र है।
- ☞ परमात्मा और प्रकृति के मध्य रहने वाली आत्माओं की गणना अनन्त है।
- ☞ परमात्मा का मुख्य नाम 'ओ३म्' है।

२६हनुमान का सूर्य को निगलना

महाराजा हनुमान को सूर्य की सर्व विद्या का ज्ञान था। आधुनिक जगत यह कहता है कि हनुमान जी ने सूर्य को अपने मुख में ले लिया था। ऐसा नहीं है, सूर्य की विद्या उसके कंठ में विद्यमान थी। हनुमान जी ने 'पादुका' यन्त्र का निर्माण किया था जो सूर्य की किरणों के साथ सूर्यमण्डल की यात्रा करता था। हनुमान जी सूर्य विद्या के महापण्डित थे। वे जानते थे कि सूर्य कितना विज्ञानमय है? सूर्य की किरणों का क्या रहस्य है? सूर्य की किरणों से किस प्रकार स्वर्ण और धातुओं का निर्माण होता है। धातु का योग कैसे बनता है और कैसे शुष्क होता है?

बाल्यकाल में ही हनुमान जी ने अपनी माता अंजना से कहा था कि मेरा हृदय तो ऐसा कह रहा है कि सूर्य की आभा को अपने में निगल लूँ। बाल्यकाल में ही विचारता रहता था कि यह सूर्य क्या है? इसमें क्या पदार्थ है? इस प्रकार सूर्य की विद्या व आभा को अपने में निगलने वाला बना। सूर्य लोक को नहीं निगला जाता, सूर्य विद्या को निगला जाता है। सूर्य की प्रतिभा को निगलने का नाम ही सूर्य को निगलना है।

सूर्य प्रातःकाल में उदय होकर संसार को जागरूक कर देता है। नाना प्रकार की वनस्पतियों को तपा देता है। पृथ्वी के गर्भ में नाना प्रकार के खाद्य और खनिजां को तपा देता है। सूर्य की आभा से अन्तरिक्ष में विद्युत का भरण हो जाता है। विद्युत का भरण होते हुए सर्वत्र सूर्य से विद्या प्राप्त होती है। सूर्य विद्या तेजोमयी और अग्निमयी विद्या कहलाती है।

हनुमान जी गान विद्या के भी विशेषज्ञ थे। जब भयंकर वनों में गान गाते थे, सामगान गाते थे और उसमें सूर्य विद्या का पुट लगाते थे तो भयंकर अन्धकार में प्रकाश हो जाता था। अपनी वाणी के द्वारा मन्त्रों से वृष्टि भी करते थे और प्रकाश भी कर लेते थे।

वे दीपमालिका राग को जानते थे। जब लंका को विजय करके अयोध्या में राम पहुंचे थे, तो उस समय हनुमान जी ने राम के समीप यह गान गाया था। उस समय अयोध्या में दीपक ही दीपक प्रकाशित हो गए, तो भरत को यह प्रतीत हो गया कि राम लंका को विजय करके अयोध्या में आ गए हैं। इस विद्या को आदि ब्रह्मा भी जानते थे और उनके पुत्र अथर्वा भी जानते थे।

२७ कुम्भकरण-एक महान वैज्ञानिक

कुम्भकरण के बाल्यकाल का नाम अश्विनी केतु था। महर्षि भारद्वाज ने उसका नामकरण 'कुम्भकरण' इसलिये रखा क्योंकि वह बलवान था, बलिष्ठ था और विशाल हृदय का था। जैसे कुम्भ का जल शीतल होता है, वैसे ही शीतल और सौम्य स्वभाव का कुम्भकरण था। उसका मस्तिष्क भी कुम्भ के आकार की तरह विशाल था। वह निद्रा बहुत सूक्ष्म लेता था क्योंकि हमेशा अनुसन्धान में लगा रहता था।

प्रातःकाल यज्ञ के लिए नाना प्रकार की औषधियों से सामग्री बनाते थे। उसकी ९ कोणों वाली यज्ञशाला थी। यज्ञ के परमाणुओं को अपने यन्त्रों में एकत्रित कर लेते थे। उन परमाणुओं के द्वारा मंगल ग्रह की यात्रा कर लेते थे। दो दिवस और दो रात्रियों में मंगल ग्रह पर पहुँच जाते थे।

आधुनिक काल में एक वार्त्ता प्रचलित है कि कुम्भकरण ६ माह तक निद्रा में तल्लीन रहते थे और ६ माह तक जागरूक रहते थे। परन्तु कुम्भकरण ६ माह तक हिमालय की कन्दराओं में नाना प्रकार के अनुसन्धान करते थे। इस प्रकार उनका जीवन ६ माह तक लुप्त रहता था। छः माह उन्होंने राष्ट्र की शासन व्यवस्था के लिए समर्पित कर रखे थे। इन महीनों में शिक्षालयों में अस्त्रों-शस्त्रों की विद्या प्रदान करते थे। महर्षि भारद्वाज ने उसे ऊँचा वैज्ञानिक बनाया था।

कुम्भकरण ने सर्वप्रथम रावण से कहा था कि तुम राम से संग्राम मत करो। राम से संग्राम करने में तुम्हें लाभ नहीं होगा। रावण की बुद्धि में विचार नहीं आया। माता सीता की वेदना ने रावण परिवार नष्ट कर दिया। कुम्भकरण ने रावण से कहा था कि यह तुमने क्या किया? परस्त्री का अपहरण करना राजा का कर्त्तव्य नहीं होता।

कुम्भकरण ने मृत्यु से पूर्व कहा था कि पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण कुबेर की लंका में जन्म लेने का सौभाग्य मिला। पुलस्त्य ऋषि का वंशज होते हुए भी मैंने अपने जीवन का उत्थान नहीं किया। मैंने रावण को प्रसन्न करने के लिए राष्ट्र के जीवों को सताया। आज मेरे सब पाप मेरे समक्ष आ रहे हैं। इस शरीर को त्यागकर अगले जन्म में जा रहा हूँ। जिस गति से मेरी मृत्यु हो रही है, उससे तो मुझे वह योनि प्राप्त होगी जहाँ मुझे प्रकाश का अंकुर भी नहीं मिलेगा।

- ☞ **किसी भी महापुरुष को परमात्मा मानना सर्वथा असंगत है।**
- ☞ **संस्कारां के न रहने का कारण ही मोक्ष है।**
- ☞ **सृष्टि की अवधि निश्चित है।**
- ☞ **श्वास की गति को शक्तिशाली बनाने के लिए ब्रह्मचर्य अनिवार्य है।**
- ☞ **तपस्विनी माताएँ ही महापुरुषों को जन्म देती हैं।**
- ☞ **सन्तानों की प्रवृत्तियों एवं विचारों का निर्माण माता द्वारा होता है।**
- ☞ **योगी के कोटि-जन्मों के संस्कार मस्तिष्क में जागृत हो जाते हैं।**
- ☞ **विचार और संकल्प से नाड़ियाँ जागरूक हो जाती हैं।**
- ☞ **व्यक्ति, परिवार और समाज के उत्थान के लिए तपस्या अनिवार्य है।**
- ☞ **भोगी-विलासी का जीवन क्षणिक होता है।**
- ☞ **कंचन और कामिनी में अधिक लिप्त हो जाना ही मानव की मृत्यु है।**
- ☞ **जो मानव अशुद्ध उच्चारण करते हैं, अगले जन्मों में परमात्मा उनसे वाणी को छीन लेते हैं।**
- ☞ **जिनका इन्द्रियों पर संयम नहीं होता, वे आत्मा का हनन करते हैं।**

२८योगेश्वर श्रीकृष्ण

योगेश्वर श्रीकृष्ण का जन्म जन्माष्टमी के दिवस हुआ था। उनका जन्म राजगृह में नहीं अपितु राजा कंस के कारागार में हुआ। राजा कंस महाराजा उग्रसेन का पुत्र था। प्रसंग है कि एक समय कंस ने नारद मुनि से पूछा कि मेरी मृत्यु कैसे होगी? नारद मुनि ने उत्तर दिया कि तुम्हारी जो बहन देवकी है, इसी के गर्भ से सातवीं सन्तान पैदा होगी, वह पुत्र होगा और वही तुम्हारी मृत्यु का कारण बनेगा।

राजा कंस ने संकल्प कर लिया कि अपनी बहन की प्रत्येक सन्तान को जन्म होते ही नष्ट करूँगा और मृत्यु को आने ही नहीं दूंगा। अतः उसने अपनी बहन देवकी और बहनोई वसुदेव को अपने कारागार में बन्दी बना लिया। जो भी शिशु गर्भ से उत्पन्न होता, उसको कंस अपने सेवकों से नष्ट करा देता। मृत्यु के भय से वह सूक्ष्म-सूक्ष्म कन्याओं को नष्ट करने लगा। जब सातवें की आशाकृति हुई तो राजा कंस के अत्याचारों से समाज में एक बड़ी क्रान्ति आई। क्रान्तिवादियों ने कहा इसने तो अपने ही सम्बन्धियों को कारागार में स्थिर कर दिया, यह हमें क्यों नहीं मृत्यु दण्ड देगा?

राज्य की सारी प्रजा परमात्मा से याचना करने लगी कि हे प्रभु! देवकी के गर्भ से सातवां शिशु उत्पन्न होने वाला है, उसकी रक्षा कर। परमपिता परमात्मा ने प्रजा की आत्मा की ध्वनि स्वीकार की और स्वीकार करने का परिणाम यह हुआ कि जिस दिन श्रीकृष्ण जी का जन्म होने वाला था उसी दिन देवकी और वसुदेव यमुना पर स्नान करने जा पहुँचे।

वहां पर माता देवकी को माता यशोदा के दर्शन हुए। माता यशोदा ने कहा कि मैं गर्भवती हूँ, यदि मेरे पुत्री उत्पन्न होगी तो मैं तुम्हें अर्पित कर सकती हूँ और पुत्र को मेरे यहाँ अर्पित कर देना। उन दोनों का एक संकल्प हो गया। रात्रि में जब योगेश्वर श्रीकृष्ण का जन्म हुआ तो उस कारागार में जितने भी कर्मचारी थे वे सब गाढ़ी निद्रा में परिणत हो गये। जिसको प्रभु जीवन देता है और जो स्वयं पवित्र आत्मा हो तो उसको संसार में कौन नष्ट कर सकता है?

योगेश्वर श्रीकृष्ण जी का जन्म उल्टे पैरों हुआ। पुत्र का जन्म होते ही वसुदेव अपने बालक को एक सूक्ष्म से पात्र में ले करके यमुना को पार करते हुए यशोदा के द्वार पर जा पहुँचे। उसी रात यशोदा के कन्या का जन्म हुआ। उसने उसे वसुदेव को अर्पित कर दिया। प्रातःकाल होने से पूर्व वसुदेव ने कन्या ले जाकर देवकी को अर्पित कर दी।

दिवस होते ही कंस ने कहा कि पुत्र है या पुत्री है। सेवकों ने कहा कि पुत्री है। राजा कंस ने उसे भी नष्ट कर दिया। कुछ दिवस पश्चात् नारद पुनः आ गए। कंस ने नारद मुनि से कहा कि मैंने देवकी के सर्व शिशुओं को नष्ट कर दिया है। नारद ने कहा कि तुम्हारी मृत्यु का तो कारण बन गया है। वह पुत्र तो माता यशोदा के यहाँ पहुँच गया और वह नष्ट नहीं हो सकेगा। यह वाक्य कंस ने श्रवण किया तो उन्होंने योद्धाओं को समय-समय पर श्रीकृष्ण जी को नष्ट करने के लिए भेजा। वह कैसे नष्ट हो सकता था? महापुरुषों की महिमा अलौकिक होती है, उनका जीवन भी अलौकिक होता है और उनकी सब इन्द्रियों की प्रतिभा अलौकिक होती है। बचपन सें ही श्रीकृष्ण जी ने अनेक योद्धाओं को नष्ट किया परन्तु वह स्वयं ज्यां का त्यों रहा।

राजा कंस के कारागार में माता देवकी सदैव गायत्री महामन्त्र का चिन्तन करती रहती थी और संकल्पवादिनी बनी रहती थी। वे माताएं महान होती हैं जिनका मन पवित्र होता है। जो अन्न कंस देता था उसको गायत्री माँ के अर्पण करके, शुद्ध संकल्प करके अर्थात् एक सौ एक बार गायत्री का पाठ करके पान करती थी। इसी कारण माता देवकी के गर्भ से योगेश्वर श्रीकृष्ण जैसा पुत्र उत्पन्न हुआ जो अपने पूर्व जन्मों को भी भलीभांति

जानता था।

गोकुल वासियों के गृहों में जितना भी दही और घृत होता था, वह राजा कंस के यहाँ 'कर' के रूप में जाता था। श्रीकृष्ण जी ने कहा कि घृत और दही गृहों में ही रहना चाहिए, राजा के यहाँ इस प्रकार का 'कर' नहीं जाना चाहिए। अतः प्रजा ने 'कर' देना बन्द कर दिया।

बाल्यकाल से ही श्रीकृष्ण जी की इतनी तीव्र बुद्धि थी कि वह सब कार्य विद्वतापूर्वक करते थे। बचपन से ही सोलह कलाओं में पारंगत थे। नित्य-प्रति साधना के साधक रहते थे। वे जानते थे कि पृथ्वी में क्या-क्या है? अन्तरिक्ष में परमाणु क्या कर रहे हैं? उन्हें प्रकृति का पूर्ण ज्ञान था।

श्रीकृष्ण जी ने महर्षि सन्दीपन के आश्रम में शिक्षा ग्रहण की। उन्हें सोलह हज़ार वेद की ऋचाएं कंठस्थ थी जिन्हें आलंकारिक रूप में गोपिकाएं कहा जाता है। वह एकान्त स्थान में वेद की विद्या को अच्छी प्रकार विचारा करते थे और गोपिका रूपी ऋचाओं से विनोद किया करते थे। वह हर समय वेद की ऋचाओं में मुग्ध रहा करते थे।

योगेश्वर श्रीकृष्ण की एक ही पत्नी थी जिसे राधा, रूक्मिणी और सत्यभामा के नामों से पुकारा जाता था। उनकी पत्नी से प्रद्युमन नामक बालक उत्पन्न हुआ। उसके पश्चात् उस महान जन्म-जन्मान्तरों के योगी ने बारह वर्ष तक अपने जीवन का अनुसन्धान किया। द्वापर के पश्चात् किसी ने अपने जीवन का ऐसा मन्थन नहीं किया। उनके एक-एक रोम से ऐसी ज्योति उत्पन्न होती थी जैसे सूर्य की महान किरणें होती हैं। अपने समय में बहुत बड़े बुद्धिमान, महान एवं विचित्र थे। वेदों के प्रकाण्ड पंडित थे। उनकी ऐसी प्रबल आत्मा थी कि दूसरां की आत्मा उनके आत्मिक बल से प्रभावित होकर उनके ही आदेशों पर चलने लगती थी।

भगवान श्रीकृष्ण जी ने एक समय कहा था कि 'जिस समाज में गऊओं की रक्षा होती है वह समाज ऊँचा बन जाता है। वे मार्ग से आते, तो एक ध्वनि किया करते थे, ध्वनि नाद सुनकर गऊएँ प्रसन्न होकर दूध देने के लिए तत्पर हो जाती थी। जब दुधारू पशु प्रसन्न होकर दूध देता है तो वह बुद्धिवर्धक होता है। उन्होंने कहा कि राष्ट्र में किसी पशु, पक्षी अथवा जीव का हनन नहीं होना चाहिए। राष्ट्र में गऊओं की रक्षा करना सबका परम कर्त्तव्य होता है। यदि पशु के हृदय में यह वेदना नहीं है कि मैं दुग्ध प्रदान कर सवूँळ तो वह दुग्ध रक्त के तुल्य ही होता है।

भगवान श्रीकृष्ण वेद-मन्त्रों के गोपनीय विषयों को विचारते रहते थे। उनके ऊपर अनुसन्धान किया करते थे और अनुसन्धान करते-करते प्रकृति पर शासन कर लेते थे। प्रातःकाल जब अन्तरिक्ष में तारा-मण्डलां का प्रकाश रहता था, उस समय अपने स्थान को त्याग देते थे और गायत्राणी छन्दों का पाठ करते थे। उसके पश्चात् यज्ञ करते थे और यज्ञ के ऊपर अनुसंधान किया करते थे। उनकी पत्नी उनसे निवेदन करती रहती कि महाराज! आप भोजन भी पान नहीं करते हो, सदैव ऐसे गोपनीय विषयों में संलग्न हो जाते हो कि आपको संसार का ज्ञान नहीं रह पाता। श्रीकृष्ण जी कहते हे देवी! मैं क्या करूँ? यह जो वेदों का ज्ञान है, यह ऐसा गोपनीय विषय है कि मेरा हृदय प्रसन्न रहता है और इसे त्यागने के लिए मेरी इच्छा नहीं होती कि आज मैं इस वैदिक परम्परा को त्याग दूँ अथवा यह गोपनीय विषय मेरे हृदय से दूर चले जाएं।

योगेश्वर श्रीकृष्ण ने वेदों का अध्ययन करने से ही नाना प्रकार के यन्त्रों का आविष्कार किया था। भौतिक विज्ञान में उनकी विलक्षण गति थी। उन्होंने एक यन्त्र जाना था जिसके द्वारा महाभारत युद्ध की जितनी भूमि थी उसको 'शृंगकेतु' नाम की रेखा से युद्ध क्षेत्र को सीमाबद्ध कर दिया था। जब संग्राम हुआ तो नाना प्रकार के परमाणुओं का प्रयोग किया गया, परन्तु उस रेखा में यह विशेषता थी कि जितना भी भौतिक यन्त्रों का प्रभाव होता

था जिनसे पृथ्वी पर विध्वंस हो सकता था, वह उस रेखा से बाहर नहीं जाता था। ऐसी ही रेखा को त्रेता काल में लक्ष्मण ने जाना था और माता सीता के चारों ओर स्थिर किया था।

श्रीकृष्ण जी ने मौनधुक नाम के यन्त्र को जाना जिसके छोड़ने से अन्तरिक्ष में रात्रि प्रतीत होती थी और सोमधुक यन्त्र जाना जिसके छोड़ने से रात्रि का अन्धकार दूर हो जाता था। इन्हीं यन्त्रों द्वारा अर्जुन की सहायता करके उन्होंने जयद्रथ को नष्ट करवाया था। मंगल ग्रह की यात्रा करने के लिए सौकिक नामक यन्त्र भी निर्धारित किया था।

योगेश्वर श्रीकृष्ण जी कुरूक्षेत्र युद्ध के नियन्ता एवं नीतिज्ञ थे। जैसी राजनीति देखी, जैसा समय देखा, उसके अनुकूल व्यवहार किया, यह केवल उन्हीं की योग्यता थी। महाभारत काल में भौतिकता बहुत बढ़ गई थी। नाना प्रकार के यन्त्र बन गए थे। महाराजा अम्बरीश के पास एक ऐसा यन्त्र था जिसके एक बार प्रयोग से ही नौ अक्षौहिणी सेना समाप्त करके यन्त्र वापिस उनके पास आ जाता था। ऐसे-ऐसे यन्त्र थे जिनके प्रयोग से पृथ्वी में विशाल खड्डे हो जाते थे, बड़े-बड़े जलाशयों को सुखा कर भूमि में बदल देते थे। जहाँ भौतिक विज्ञान से ऐसे-ऐसे यन्त्रों का निर्माण कर, एक-दूसरे को नष्ट करने की योजनाएं बनाई जा रही थी, वहाँ श्रीकृष्ण जी ऐसे महान योगी थे जिन्हांने महाभारत जैसे विनाशकारी युद्ध को रोकने का यत्न किया परन्तु जब कुछ न हुआ तब महाभारत का युद्ध कराया। युद्ध में श्रीकृष्ण जी, अर्जुन के सारथी थे। अर्जुन दोनों पक्षां को देखकर शोकातुर हो गए थे। तब श्रीकृष्ण जी ने कहा था कि हे अर्जुन! यह मोह तुम्हें इस प्रकार क्यों आया है? कर्त्तव्य को जो मानव मोह के वशीभूत होकर त्याग देता है, उस मानव के यह लोक और परलोक दोनों ही बिगड़ जाते हैं। अतः आज तुम शोकातुर न हो। अपने कर्त्तव्य को न त्यागो। आज जिनका तू मोह कर रहा है वे तो नष्ट होने ही हैं। श्रीकृष्ण के उपदेशों को सुनकर अर्जुन का अज्ञान दूर हो गया और युद्ध करने को तैयार हो गया। ये उपदेश ही 'भगवद्गीता' नामक ग्रन्थ में विद्यमान हैं। इस संग्राम में सब बुद्धिमान और वैज्ञानिक समाप्त हो गए। कुरूक्षेत्र का मैदान श्मशान स्थल बन गया। प्राणी मात्र दृष्टिपात करने के लिए सूक्ष्म रह गए। कौरवों के कुटुम्ब में केवल एक नेत्रहीन धृतराष्ट्र रह गया और माताएं रह गई। पाण्डव पुत्रों ने विचारा अब हमें कहाँ गमन करना चाहिए।

कुरूक्षेत्र में एक सभा हुई जिसमें निर्णय लिया गया कि हस्तिनापुर चलें। जब गति करने लगे तो भगवान श्रीकृष्ण नेत्रों को अन्तर्मुखी हो करके, चिन्तन करके बोले, 'आज गति नहीं करेंगे, हम कल हस्तिनापुर धृतराष्ट्र के समीप जायेंगे।' अर्जुन को लेकर एकान्त स्थली में आ गए। अपने यन्त्रों में विद्यमान होकर उन्होंने एक लोहे का भीम स्थापित कर दिया। उस लोहे के भीम को हस्तिनापुर में एक स्थली पर स्थिर करके पुनः कुरूक्षेत्र आ पहुँचे। अगला दिवस आया तो पाँचों पाण्डव और श्रीकृष्ण हस्तिनापुर आ गए। जब धृतराष्ट्र से मिलने पहुँचे तो धृतराष्ट्र ने श्रीकृष्ण जी से कहा कि मैं भीम को कण्ठ से ओत-प्रोत होना चाहता हूँ। श्रीकृष्ण जी ने जान लिया। उन्होंने जो लोहे का भीम स्थापित किया था उसे पकड़ा कर कहा कि यह है भीम, तुम्हारे वंश को समाप्त करने वाला। उस अन्ध धृतराष्ट्र ने लोहे के भीम को नष्ट कर दिया और भीम का जीवन बच गया।

श्रीकृष्ण जी महान परमयोगी थे जिन्होंने प्रभु की महत्ता को जाना था। आज के मानव ने उन्हें परमात्मा कहकर उनके महत्व को समाप्त कर दिया है। किसी भी महापुरुष को परमात्मा कहना असंगत है। भगवान शब्द का प्रयोग आदरसूचक है।

सर्वशक्तिमान परमात्मा को जन्म धारण करने की क्या आवश्यकता है? परमात्मा तो निराकार रहते हुए भी जिस वस्तु की रचना कर देते हैं, उसका नाश भी वे निराकार होते हुए ही कर सकते हैं क्योंकि परमात्मा तो निराकार होते हुए सर्वशक्तिमान भी है। अवतार यह नहीं होता कि परमात्मा मनुष्य रूप धारण करके आ जाए

अपितु अवतार उसे कहते हैं जो परमात्मा के निकट जाने वाली आत्मा हो। ऐसी आत्मा लोक कल्याण के लिए जन्म लेती है।

- ☞ **परमात्मा का गुणगान गाने से हृदय में आनन्द की तरंगें उत्पन्न होने लगती हैं।**
- ☞ **जीवन-मुक्त प्राणियों को पाप और पुण्य दोनों नहीं व्यापते।**
- ☞ **मन विभाजन करने वाला तथा प्राण विभाजित होने वाला है।**
- ☞ **वेद का ज्ञान सब लोक-लोकान्तरों में है और सम्पूर्ण विद्याओं का मूल वेद है।**
- ☞ **वेद का प्रत्येक मन्त्र तथा उसका शब्दार्थ 'ओ३म्' से बिन्धा है।**
- ☞ **वेद ज्ञान आर्ष है, अमर है।**
- ☞ **सारी भाषाओं का मूल वैदिक भाषा है।**
- ☞ **वेदों की रचना मानव नहीं कर सकता। वेद ईश्वरीय वाणी है।**

२९ योगेश्वर श्रीकृष्ण की १६ हजार गोपिकाएं

आधुनिक काल में योगीराज श्रीकृष्ण की १६ हजार रानियाँ थीं, ऐसा कहा जाता है। वास्तव में मानव ने इस रहस्य को समझा नहीं, कि १६ हजार गोपियाँ, जिनके साथ महाराजा कृष्ण विहार किया करते थे, वे क्या थीं? योगीराज श्रीकृष्ण १६ हजार वेद ऋचाएं जानते थे और उनके साथ विनोद किया करते थे। एकान्त स्थान में विराजमान हो करके वेद की विद्या को अच्छी प्रकार विचारा करते थे। उन गोपिकाओं अर्थात् ऋचाओं से विनोद किया करते थे जिनसे उन्होंने संसार के ज्ञान-विज्ञान को जाना।

भगवान कृष्ण एक समय गोपिकाओं से विनोद ही करते रहे और विनोद करते-करते उन्हें कई दिवस हो गए। महारानी रूक्मणी आई और कहा, "प्रभु! आप क्या कर रहे हैं? आप इन गोपिकाओं में विनोद करते रहते हैं, आपको राष्ट्र का ध्यान नहीं।" श्रीकृष्ण जी ने कहा, "देवी! संसार तो चलता चला आ रहा है और चलता चला जाएगा। तुम मुझे गोपिकाओं से विनोद करने दो, मैं जब इनसे विनोद करता हूँ तो मुझे आनन्द आता है और मेरी अन्तरात्मा शक्ति प्राप्त कर लेती है।"

योगीराज श्रीकृष्ण जी की धर्मपत्नी को तीन नामां से पुकारा जाता था-राधा, रूक्मणी और सत्यभामा। विवाह के १२ वर्ष पश्चात् उनका एक ही पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम प्रद्युम्न था। उनके और उनके पुत्र के शरीर से, तपस्या के कारण, सूर्य की तरह किरणें निकलती थी।

मानव शरीर के सब क्रिया-कलापों को भगवान कृष्ण जानते थे। कंस को विजय करने के पश्चात् समुद्र तट पर विराजमान होकर तपस्या करते रहे। उन्होंने बारह-बारह वर्षों तक कई बार तप किया। ऐसे तपस्वी को देवियों में विनोद करने वाला कहना अज्ञानता है। न जानकर अर्थों का अनर्थ नहीं होना चाहिए। अर्थों का अनर्थ होने से महापुरुषों के जीवन की आभा समाप्त हो जाती है। उनका क्रिया-कलाप समाप्त हो जाता है, उसमें रूढ़ि आ जाती है और वह रूढ़ि ही महापुरुषां के चरित्र में अशुद्धता कर देती है।

योगीराज श्रीकृष्ण जी १६ कलाओं में पारंगत थे। सभी कलाओं को अच्छी तरह जानकर उनमें विचरण करते रहते थे। सबसे प्रथम चार कला-प्राची-दिग्, दक्षिण-दिग्, प्रतीचि-दिग् और उदीचि-दिग् हैं। (पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाएं) द्वितीय चार कला-पृथ्वी-कला, वायु-कला, अन्तरिक्ष-कला और समुद्र-कला। तृतीय स्थान में सूर्य-कला, चन्द्र-कला, अग्नि-कला और विद्युत-कला। चतुर्थ स्थान में मन-कला, चक्षु-कला, श्रोत्र-कला और घ्राण-कला।

उपरोक्त सभी कलाओं को जानने के लिए भगवान श्रीकृष्ण सदैव तत्पर रहते थे। योग में उनकी प्रबल गति थी। जो १६ कलाओं को जानने वाला महापुरुष होता है, वह संसार में महान कहलाया जाता है। भगवान राम १२ कलाओं को जानते थे। प्रथम चार कलाओं से अनभिज्ञ थे।

इन कलाओं के ऊपर अपने जीवन का समावेश कर लेना ही इन १६ कलाओं को जानना है। इनके बिना मानव का जीवन किसी भी काल में पवित्र नहीं होता। मानव जब अपने को इन कलाओं में रमण कर देता है, अनुसन्धान करता है तो उसी काल में उसका जीवन सुन्दरता में परिणित होता चला जाता है। जो मानव इन्हें जान लेता है, उसके समीप अज्ञान नहीं रहता। भगवान श्रीकृष्ण इन षोडष कलाओं में रमण करते रहते थे।

३० विदुषी द्रौपदी

द्रौपदी पांचाल राष्ट्र के राजा द्रुपद की कन्या थी। वह बचपन से ही प्रखर बुद्धि वाली थी। उसने महर्षि सामन्तक से वेदों की शिक्षा का अध्ययन किया था। वह सदैव वेदों का गान करती रहती थी।

बाल्यकाल से मृत्यु पर्यन्त एक भी दिन ऐसा नहीं था जिस दिन उसने प्रातःकाल यज्ञ न किया हो या वेदों का अध्ययन न किया हो। पांडु पुत्र अर्जुन की प्रशंसा सुनकर राजा द्रुपद ने संकल्प कर लिया था कि उसकी पुत्री का विवाह अर्जुन के साथ होना चाहिए। पाँचों पाण्डव विदुर की सहायता से माता कुन्ती सहित लाक्षागृह बरनावा से जीवित बच निकले थे। उनके स्थान का पता न होने के कारण राजा द्रुपद चिन्तित थे। भगवान श्रीकृष्ण की प्रेरणा से राजा द्रुपद के हृदय में द्रौपदी के लिए स्वयंवर करने की भावना आई।

राजा द्रुपद के वैज्ञानिकों ने एक यन्त्र तैयार किया। वह एक चक्र था। चक्र में एक छिद्र था, जिसमें से होकर यान्त्रिक मछली के नेत्र को छेदन करना था। चक्र एक क्षण में ७५०० चक्र पूर्ण करता था। राजा की प्रतिज्ञा थी कि जो छिद्र में से होकर शस्त्र द्वारा यान्त्रिक मछली के नेत्र का छेदन करेगा, वही मेरी कन्या से विवाह कर सकता है।

पाण्डव भी भ्रमण करते हुए पांचाल राष्ट्र में पहुँच गए। माता कुन्ती को एक कुम्भकार के घर ठहरा कर साधुओं के वेश में स्वयंवर में पहुँच गए जहाँ अनेक राजा बारी-बारी से मछली के नेत्र को छेदने का प्रयास कर रहे थे। कर्ण ने भी यह विचार किया कि मैं इसका छेदन करूंगा, परन्तु द्रौपदी ने कहा, "हे कर्ण! तुम्हें इसका अधिकार नहीं क्यांकि तुम्हारे जन्म के विषय में प्रतीत नहीं कि तुम कैसे उत्पन्न हुए? तुम्हारे माता-पिता कौन हैं? जब द्रौपदी ने ये वाक्य कहे, तो कर्ण क्रोधित होकर अपने स्थान पर जा बैठे। जब कोई क्षत्रिय ऐसा न रहा जो मछली के नेत्र को छेद सकता, तो राजा द्रुपद ने सभी को ललकार कर अनेक बातें कही। ऐसा सुनकर अर्जुन ने धर्मराज युधिष्ठिर से कहा कि अब नहीं रहा जाता।

अर्जुन ने कर्ण के त्यागे हुए शस्त्रों से ही मछली के नेत्र का छेदन कर दिया। द्रौपदी ने अर्जुन के गले में माला डाल दी। इस प्रकार अर्जुन का विवाह द्रौपदी के साथ हो गया।

पाँचों पाण्डवों की अपनी-अपनी पत्नी थी। पाँचों अपने-अपने कक्ष में रहते थे। धर्मराज युधिष्ठिर का विवाह महाराजा श्वेतकेतु की कन्या से, भीम का हिडम्बा से, नकुल का देवनाग ऋषि की कन्या से और सहदेव का अवधूत नाम के राजा की कन्या रोहिणी से हुआ था।

आधुनिक काल में इतिहास में आई अशुद्धता के कारण द्रौपदी को पाँचों पाण्डवों की पत्नी कहा जाता है। वस्तुतः पाँच पतियां का अभिप्राय यह है कि पति उसे कहते हैं जो रक्षा करने वाला हो। पाँचों ही द्रौपदी की रक्षा करते थे। बनवास के १२ वर्षों में द्रौपदी ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई पाण्डवों के साथ रही। उसने अपने पति के भाइयों या अन्य किसी भी पुरुष को पिता या पुत्र के दृष्टिकोण से ही देखा। पति के चारां भाइयों ने भी उसकी रक्षा पुत्री भाव या मातृ भाव से ही की।

द्रौपदी सदैव कला कौशल करती रहती थी। कला में वह पारायण थी। उसके बदले जो द्रव्य आता था, उससे जीवन का निर्वाह करती थी। माता कुन्ती ने द्रौपदी से यह कहा कि हे पुत्री! तुम ऐसा क्यों करती हो? द्रौपदी ने कहा, इससे मेरा मन पवित्र होता है। मैं अपने मन को पवित्र रखना चाहती हूँ। जो यह तुम्हारा राष्ट्र है, यह अशुद्ध बन गया है। इस हस्तिनापुर की स्थली में अग्नि प्रदीप्त होने वाली है। अतः मेरे कार्य में बाधक मत बनो। द्रौपदी भयंकर वनों में रही, वहाँ भी स्वयं परिश्रम करती थी।

भयंकर वनों में भी द्रौपदी ऋषि-मुनियों की सेवा करती रहती थी। कोई भी अतिथि आता, ऋषि-मुनि आते

तो फल व कन्द-मूल उन्हें अर्पण करके प्रसन्न होती रहती थी। जो अपने में सदैव प्रसन्न रहने वाली होती है, उसके गृह में सदा प्रसन्नता रहती है। हमारे आचार्यों ने वैदिक साहित्य में संकल्प-शक्ति को एक महान शक्ति माना है। द्रौपदी संकल्प शक्ति के द्वारा ही अतिथियों की सेवा करती रही।

आध्यात्मिक द्रौपदी और भगवान श्रीकृष्ण को भविष्य की बात का ज्ञान हो जाता था। कौरवां का यह विचार बन गया कि पाण्डवों को कैसे विजय किया जाए? उन्होंने युधिष्ठिर से जुआ खेलने की योजना बना ली।

स्वभाव से युधिष्ठिर भोले-भाले थे। दुर्योधन ने अपने मामा शकुनि को जुए में आगे करके द्रौपदी समेत सब कुछ जीत लिया। जब विनाश का समय आता है तो बुद्धियाँ भी परिवर्तित हो जाती हैं। अगले दिवस दुर्योधन ने अपने विधाता जरयोधन (दुःशासन) से कहा, जाओ! पांचाली को ले आओ। मैं उसे नग्न दृष्टिपात करूँगा। महारानी गान्धारी, माता कुन्ती, देवव्रत भीष्म, पाँचों पाण्डव और सब आर्यवर विद्यमान थे।

सभा में लाने के पश्चात् किसी का यह साहस नहीं बना कि द्रौपदी के वस्त्रों को कोई छू भी सके। द्रौपदी ने कहा, "जहां देवव्रत जैसे पितामह विद्यमान हों, द्रोणाचार्य जैसे विद्यमान हां, उन सबके रक्त में दूषितपना आ गया है। जहाँ मेरे पति सहित पाँचों विधाता विद्यमान हों उनके रक्त में निराशा आ गई है। आज इस समय मुझे प्रतीत हो रहा है, हे दुर्योधन! कि हस्तिनापुर की स्थली पर अग्नि की वृष्टि होने वाली है।" भरी सभा में से सब अपने-अपने गृह को प्रस्थान कर गये। हस्तिनापुर की स्थली पर कोई प्राणी ऐसा नहीं था जो उसके वस्त्रों को स्पर्श करने वाला हो।

महाभारत के संग्राम के पश्चात् भीष्म पितामह शरशैया (बाण-शैया) पर थे। इस अवस्था में भी वे पाण्डवों और उनके परिवारजनों को उपदेश देते रहते थे। वे ब्रह्म और ब्रह्माण्ड की चर्चाएं करते रहते थे। एक दिन जब उपदेश दे रहे थे तो द्रौपदी ने कहा, "हे पितामह! एक प्रश्न मैं भी आपसे जानना चाहती हूँ। जिस समय दुर्योधन ने भरी सभा में मुझे नग्न करना चाहा, तो आप, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि अनेक बुद्धिमानों ने सभा में उपस्थित होते हुए भी मेरी रक्षा नहीं की, उस समय आपका ब्रह्मज्ञान और तप कहाँ चला गया था? भीष्म पितामह बोले, "हे पुत्री! उस समय मैं क्या कर सकता था? द्रौपदी ने कहा, "आप सब कुछ कर सकते थे। आप राष्ट्रपिता थे। राष्ट्रपिता क्या नहीं कर सकता?"

भीष्म पितामह ने कहा, "हे पुत्री! मैंने राष्ट्रीय अन्न खाया था। राष्ट्रीय अन्न मेरी मनोभावनाओं में ओतप्रोत था। उस अन्न को खाकर मेरी बुद्धि भ्रमित हो गई थी। अर्जुन के तीखे बाणों से जितना मेरे शरीर से रक्त बह रहा है, उतना ही विशुद्ध मेरा विचार बन रहा है। मैंने ब्रह्मज्ञान पाकर अपने पिता के सामने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा और विवाह नहीं कराऊँगा। उस समय मैं स्वयं मामूली-सी कृषि करता था, उसका अन्न खाता था। योगाभ्यास द्वारा मैंने ब्रह्मज्ञान पाया था, परन्तु जब राष्ट्रीय अन्न खाने लगा तो मेरी बुद्धि भ्रमित हो गई। अब मेरी बुद्धि सात्विक बन रही है। तुम्हारा अन्न पवित्र है। इस अन्न में इतनी महान शक्ति है कि मेरे विचार पवित्र बन रहे हैं।"

द्रौपदी तपस्विनी थी। ऋषि-मुनि भी उसका आदर करते थे। वह वेदों पर विचार-विनिमय करती रहती थी। भगवान श्रीकृष्ण उन्हें अपनी पूज्या मानते थे और जब भी द्रौपदी से मिलते थे उनके चरणों को स्पर्श करते थे। यह उसके तप का प्रभाव था।

जिसमें तप नहीं होता, उसका कोई आदर नहीं करता। द्रौपदी अपने पिछले सात जन्मों के विषय में जानती थी। उसे स्मरण था कि वह पिछले जन्मों में क्या-क्या रही? वह महान विदुषी थी।

☞ **संसार में जीवन का श्राद्ध होना चाहिए, मृत्यु का नहीं।**

- ☞ यज्ञ मानव का जीवन है।
- ☞ संसार एक कल्पवृक्ष है, यहाँ मानव जैसी कल्पना करता है, वैसा ही बन जाता है।
- ☞ संसार एक विचारशाला है, एक प्रकार की विज्ञानशाला है, यज्ञशाला है।
- ☞ हृदय से उच्चारण किया हुआ शब्द मानव के हृदय को बहुत प्रिय लगा करता है।
- ☞ अन्धकार से प्रकाश में लाने को ही जागरण कहा जाता है।
- ☞ ऊँचे कार्य का ऊँचा परिणाम अथवा फल होता है।

३१द्रौपदी का चीरहरण

जब विनाश का समय आता है तो बुद्धियाँ भी परिवर्तित हो जाती हैं। बुद्धि में विषांकुर हो जाते हैं। कौरवों ने विचार बना लिया कि पाण्डवों को विजय करना है। पाण्डवों को विजय करने के लिए अपने मामा शकुनि से कहा कि उन्हें जुए में विजय करो। शकुनि ने कहा भाइयों में कोई हार, कोई नीचा और कोई ऊँचा नहीं होता। युधिष्ठिर स्वभाव से भोले-भाले थे। उनकी विचारधारा थी कि शकुनि मिथ्या उच्चारण नहीं कर रहा है। उसकी बातों में आकर जुए में सब कुछ हार गये। द्रौपदी को भी हारकर वचनबद्ध हो गए।

वचनबद्ध होने के पश्चात् अगले दिन दुर्योधन ने अपने भाई दुःशासन (जरयोधन) से कहा उस विदुषी द्रौपदी को हम सर्व-सभा में नग्न दृष्टिपात करना चाहते हैं। कुटुम्ब और राष्ट्र के विनाश के लिए भयंकर विचार था। ऐसी विचारों की अग्नि जिसे कोई भी शान्त नहीं कर सका। जब मानव में धृष्टता आती है, तुच्छता आती है, विनाश का क्षण आता है तो विचारों में अग्नि प्रदीप्त हो जाती है।

द्रौपदी ने स्नान नहीं किया था, क्योंकि रजस्वला थी। जब द्रौपदी को सभा में लाया गया तो महारानी गान्धारी ने भी कहा कि तुम यह क्या कर रहे हो? माता कुन्ती ने भी कहा, परन्तु इन वचनों को स्वीकार करने वाला कोई नहीं था। गुरु द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, पाँचों पाण्डव, मामा शकुनि और सब आर्यवर विद्यमान थे।

द्रौपदी को सभा में लाने के पश्चात् किसी का यह साहस नहीं बना कि विदुषी के वस्त्रों को कोई छू भी सके। दुःशासन उसे आज्ञानुसार ले आया था और वह उस सभा में आ गई थी।

दुर्योधन ने कहा कि तू विदुषी कहलाती है, आज हमें विदुषीपन को नष्ट करना है। देवी द्रौपदी ने कहा कि हे दुर्योधन, तुम्हें यह प्रतीत है कि मैंने किस गुरूदेव से अध्ययन किया और मेरे जीवन में कितना ब्रह्मचर्यव्रत है? तुम्हें प्रतीत है, मैं दुष्टों का संहार भी कर सकती हूँ। तुम मृत्यु के मुख में अपने को परिणित करना चाहते हो।

द्रौपदी ने कहा, "जहाँ देवव्रत (भीष्म पितामह) जैसे हमारे महापिता और द्रोणाचार्य जैसे विद्यमान हों, इनके रक्त में दूषितपना आ गया है। मेरे पति सहित पाँचों विधाता विद्यमान हां, उनके रक्त में निराशा आ गई है। सबके रक्त में शीतलता आ गई है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि हस्तिनापुरी की स्थली पर अग्नि की वृष्टि होने वाली है।

दुर्योधन कोई शब्द नहीं उच्चारण कर रहा है, कहता है कि मैं कैसे नग्न करूँ? दुःशासन कहता है कि मैं नग्न नहीं करूँगा। नाना विधाता कहते हैं कि हम में इतना साहस नहीं है। विदुषी सभा में विद्यमान है। देवव्रत से द्रौपदी ने कहा, "हे पितामह! यदि आपकी आज्ञा हो तो स्वतः नग्न हो सकती हूँ। इन दुष्टों में इतना साहस नहीं है। ये पामर हैं। इन पामरां में इतना आत्मबल नहीं है। जिसमें किसी द्वितीय स्त्री को नग्न करने की प्रवृत्ति बन जाती है, उसमें इतना आत्म साहस कैसे हो सकता है?"

भीष्म पितामह ने मन ही मन नमस्कार करके अपने आसन को त्याग दिया। द्रोणाचार्य और अन्य सभी अपने-अपने गृह को प्रस्थान कर गए। इतने में महाराजा संजय, धृतराष्ट्र को उस सभा में ले आए। संजय ने कहा कि महाराज! द्रौपदी विद्यमान है और सभा शून्य है। द्रौपदी को नग्न करने का एक दूषित विचार बना हुआ है।

धृतराष्ट्र ने द्रौपदी से कहा, "हे पुत्री! मुझे भिक्षा दो।" द्रौपदी ने कहा, "मैं आज कोई भिक्षा नहीं दे सकती। मैं वीरांगना हूँ। संसार में मेरा संकल्प और मेरे परमात्मा ही मेरे सहायक हैं। मैं अपना संकल्प आपको प्रदान नहीं कर सकती।"

धृतराष्ट्र ने कहा, "हे पुत्री! मुझे यह प्रतीत नहीं था, अन्यथा मैं यहीं आ विराजता। मुझे ऐसा प्रतीत होता है, मेरा वंश अग्नि-कांड में समाप्त हो जाएगा। मौन होकर पुनः कहा कि अब क्या चाहती हो?"

द्रौपदी ने कहा, "मैं, मेरा पति और पति के विधाता सब मुक्त हो। द्वितीय मेरे पति और उनके विधाताओं के

अस्त्र-शस्त्र उन्हें दिये जाएं।" धृतराष्ट्र ने कहा, "तथास्तु।"

दुर्योधन ने कहा कि पिताजी एक वचन मेरा भी है। पिता ने कहा क्या चाहते हो? दुर्योधन ने कहा, पाण्डवों का १२ वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास चाहता हूँ। धृतराष्ट्र ने कहा, अच्छा पुत्र, तथास्तु। तथास्तु कहते ही धृतराष्ट्र भूमि में अर्पित हो गए और कहा, ममता ने मेरी आभा को नष्ट कर दिया है। यदि ममता मेरे द्वारा नहीं होती तो हस्तिनापुर में अग्नि का काण्ड नहीं बनता। जो मानव दूसरों को नष्ट करना चाहता है, वह स्वयं नष्ट हो जाता है।

- **परमात्मा से मिलान करने वाली विद्या का पान करना ही सोमरस पान करना है। सोम नाम परमात्मा का रस नाम ज्ञान का है।**
- **विकल्प का कोई आदि और अन्त नहीं होता।**
- **संकल्प नाम परमात्मा का और विकल्प नाम प्रकृति का है।**
- **मन और प्राण के समन्वय का नाम योग है।**
- **प्राणायाम मन को आत्मा के साथ बाँधने वाली रस्सी है।**
- **दुराचारी मानव भी अपनी प्रवृत्ति बदलकर मुक्ति प्राप्त कर सकता है।**
- **जो मानव दूसरों को नष्ट करने का विचार बनाता है, वह स्वयं नष्ट हो जाता है।**
- **जो मानव संसार में परमात्मा से भयभीत रहता है, वह ऋषि बन जाता है।**

३२माता कुन्ती, कर्ण और पांडव

राजा कुन्तेश्वर की कन्या कुन्ती थी। वह कन्या महान सुशील थी। राजा को इच्छा हुई कि इसको इस प्रकार की शिक्षा दी जाए, जिससे यह ज्ञानवान और सुयोग्य हो सके क्योंकि बिना ज्ञान के कोई सुयोग्य नहीं बन सकता। तब राजा ने खोज की और भृगु ऋषि के पास पहुँचे और पूछा कन्या को कहाँ शिक्षा दिलवाई जाए। उस समय में राष्ट्र में भयंकर वन था। महर्षि भृगु ने बताया ब्रह्मचारी वरूण के आश्रम में प्रविष्ट किया जाए। ब्रह्मचारी वरूण की आयु २८४ वर्ष की थी और वे आदित्य व पर्जन्य नाम से भी जाने जाते थे।

राजा ने सोचा मेरी कन्या वहाँ हर प्रकार की शिक्षा ग्रहण कर सकती है। उसने ब्रह्मचारी वरूण से निवेदन करके आश्रम में नियुक्त कर दिया। वह कन्या आश्रम में रहने लगी। ऋषि ने बाल्यावस्था में व्याकरण का पूर्ण ज्ञान दिया और बाद में सब विद्याओं का बोध कराया। कुछ ही काल में वह कन्या विद्या में सम्पन्न हो गई और फिर यौवन को प्राप्त हुई। वह तेजस्वी ब्रह्मचारिणी सब विद्याओं में पारंगत हो गई।

कुछ समय के पश्चात् वहाँ श्वेत मुनि आ पहुँचे। वह तेजस्वी ब्रह्मचारी थे। यह माया मानव को कहाँ से कहाँ पहुँचा देती है और इसको कहाँ तक तुच्छ बना देती है। उस महान ब्रह्मचारी ने आश्रम में जब उस युवा सुशील कन्या को देखा तो उनके मन में तीव्र गति पैदा हुई। उस अवस्था में जब कन्या ने उस तेजस्वी ब्रह्मचारी को देखा तो उस काल में ऋतुमयी थी। इन दोनों ने एक-दूसरे को देखा। कुछ काल पश्चात् पुनः दोनों मिले। कन्या को अनुभव हुआ कि उनसे ऋषि भूमि में कितना बड़ा पाप हुआ है।

ब्रह्मचारी ने व्रत लिया कि १२ वर्ष तक अन्न का भक्षण नहीं करूँगा। तब यह पाप शान्त होगा। आगे जन्मां में न जाने किन-किन योनियों में प्रविष्ट होना पड़ेगा, अतः मेरा कर्त्तव्य है कि उपवास करूँ और पर्वतां पर भ्रमण करूँ।

जब ब्रह्मचारिणी को ज्ञात हुआ कि उसने पाप किया है तो सोचने लगी कि क्या करना चाहिए। ज्ञान के कारण मन से पाप निकल गया था। इसीलिए अपने गुरू से सब बताया और उनसे पूछा कि भगवन्! अब मैं क्या करूँ? गुरू ने कहा कि बालक को गर्भ में ऐसी शिक्षा दो कि वह योग्य बन सके।

उस कन्या ने गुरू आदेशानुसार सूर्य का जाप आरम्भ कर दिया। कन्या के हृदय में यह भावना उत्पन्न हुई कि सूर्य जैसे अपने ताप से तीनों लोकों में उज्ज्वल है, वैसा ही यह बालक हो। बालक महान, बलवान, योग्य और विद्वान हो, ऐसी प्रार्थना करने लगी।

कुछ समय के पश्चात् बालक उत्पन्न हुआ। गुरू जी से कहा कि पिता के गृह में कैसे जाऊँ? मुझे क्या करना चाहिए? गुरू जी ने कहा कि तुम एक कुशा का आसन बनाओ और पुत्र को उस पर प्रविष्ट करके गंगा में तिला´जली दे दो। ऐसा ही करके कन्या ने आसन बनाकर बालक की गंगा में तिला´जली दे दी। वह बालक बहते-बहते उसी श्वेत मुनि के आश्रम के पास जा पहुँचा। श्वेत मुनि के शिष्यों ने कुशा से उस बालक को निकालकर अपने गुरू के पास ले गए। उसी ब्रह्मचारी द्वारा उस बालक की शिक्षा हुई।

गुरू ने कुन्ती को आदेश दिया कि अब तुम एक वर्ष तक अन्न न खाकर भगवान् से प्रार्थना करो जिससे तुम्हारा पाप क्षमा हो जाए। उस देवी ने एक वर्ष पर्यन्त वनस्पति आदि का आहार किया और गायत्री का जाप किया।

कुन्ती का महाराजा पाण्डु से विवाह हुआ। महाराजा पाण्डु का बचपन का नाम श्वेतकेतु था और विद्यालय में पंडकेश्वर कहलाते थे। पंच महाभूतों को अच्छी प्रकार जानने वाले को पंडुकेश्वर कहा जाता था। महाराजा पाण्डु-पाण्डु रोग से पीड़ित नहीं थे।

महाराजा पाण्डु से महारानी कुन्ती के तीन सन्तान उत्पन्न हुई। तीनों को अपने ज्ञान और तपस्या से ऐसी शिक्षा दी कि तीनों महान और उच्च बन गये। धर्मराज युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तीनों अपने-अपने गुणों से महान कहलाते थे।

महाराजा पाण्डु का माद्री से भी विवाह हुआ और दो पुत्र उत्पन्न हुए जिनके नाम नकुल और सहदेव थे। सहदेव महाराजा पाण्डु की मृत्यु के पश्चात् उत्पन्न हुआ था।